17

रसकौस्तुभ

सम्पादक एवं व्याख्याकार
महामहोपाध्याय
डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी

इन्दु प्रकाशन
दिल्ली

वेणीदत्त विरचित

रसकौस्तुभ

सम्पादक एवं व्याख्याकार
महामहोपाध्याय
डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी

इन्दु प्रकाशन
८/३ रूपनगर, दिल्ली-७

इन्दु प्रकाशन
८/३ रूपनगर दिल्ली-११०००७

प्रथम संस्करण
१९७८

मूल्य पन्द्रह रुपये

मुद्रक
श्री विष्णु आर्ट प्रेस
२५७, चक, जीरो रोड, इलाहाबाद-३

प्रकाशकीय

भारतीय न्यायशास्त्र : एक अध्ययन के प्रकाशन के द्वारा प्रकाशन के क्षेत्र में डगमगाते पग रखते हुए मुझे यह कल्पना भी न थी कि इस क्षेत्र में हम स्थिर भी रह सकेंगे, किन्तु विद्वान् लेखक डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी द्वारा एक के बाद एक अपनी रचना द्वारा संरक्षण एवं भारतीय विद्या के मुख्यतः संस्कृत भाषा एवं दर्शन शास्त्र के विशिष्ट विद्वानों द्वारा प्रशंसा और प्रोत्साहन पाकर प्रकाशन के क्षेत्र में हमारे पग जब कुछ स्थिर हुए तभी हममें इस क्षेत्र में आगे बढ़कर कुछ कार्य करने का साहस उत्पन्न हुआ। गत वर्ष हमने शब्द शक्ति (Problem of meaning) के अध्ययन के सन्दर्भ में एक योजना प्रारम्भ की है, तथा उस योजना के अन्तर्गत अब तक **वृत्ति समुच्चय** के प्रथम गुच्छक के अन्तर्गत पांच लघु ग्रन्थों का प्रकाशन हो पाया है, इस योजना को विद्वानों ने जो आदर दिया है, उससे ही साहस करके हमने शीघ्र ही मीमांसा दर्शन के शाबर भाष्य और उसके हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने का विचार किया है। साथ ही हमारा यह भी संकल्प है कि संस्कृत में विद्यमान् कुछ अप्रकाशित महत्त्व पूर्ण ग्रन्थों का भी प्रकाशन साथ किया जाए। इस संकल्प के साथ ही श्री वेणीदत्त झा कृत प्रस्तुत कृति आपके हाथ में प्रस्तुत है। भानुदत्त कृत रसमञ्जरी एवं रसतरङ्गिणी के समान ही वेणीदत्त की यह रचना (रसकौस्तुभ) भी अपने विषय की महत्वपूर्ण कृति है। रसविषयक प्रारम्भिक जानकारी के लिए यह ग्रन्थ पाठ्यपुस्तक होने की योग्यता रखता है, ऐसा मेरा विश्वास है। मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ को रसशास्त्र के क्षेत्र में पर्याप्त सम्मान मिलेगा। इस आशा से ही यह आपके हाथ में प्रस्तुत है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में विष्णु आर्ट प्रेस के स्वत्वाधिकारी श्री गयाप्रसाद अग्रवाल का कृतज्ञ हूं, क्योंकि सहयोगियों सहित उनके श्रम से ही इसे वर्तमान स्वरूप प्राप्त हो सका है।

२-७-१९७८

—सुशीला शास्त्री

विषयानुक्रम

भूमिका

प्रतिबद्ध होकर लिखे गये काव्यों में भले ही मान्यता विशेष का प्रचार अथवा उपदेश कवि की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हो, किसी विशेष स्थिति में किसी को अपने बुद्धिके चमत्कार को दिखाकर तात्कालिक प्रभाव उत्पन्न करके धनार्जन के लिए लिखे गये काव्यों में भले ही श्लेष यमक आदि अलंकारों की प्रधानता हो, किन्तु सहृदय पाठक को अथवा स्वयं कवि को भी अपनी उस रचना में ही अधिक आनन्द का अनुभव होता है, जो रस सम्मृष्ट हो। बाल्मीकि का आदिकाव्य उनके चित्त की भाव प्रवलता की स्थिति में ही उत्पन्न हुआ है, इसमें किसी को सन्देह नहीं है। आचार्यं आनन्दवर्द्धन आदि ध्वनिवादियों के अनुसार तो वही काव्य की आत्मा है।[1] महिमभट्ट विश्वनाथ जगन्नाथ आदि आचार्यो के मत में तो रसादिं के अभाव में कोई रचना काव्य हो ही नहीं सकती।[2] इसीलिए आदिकवि ने अपने काव्य को स्वयं शृंगार आदि रसों से समन्वित किया है।[3] आचार्य भरत के अनुसार तो रसादि-योजना के बिना काव्य नाट्य आदि कोई भी रचना हो ही नहीं सकती।[4] यही कारण है कि न केवल रस को काव्य का एक प्रमुख उपादानतत्त्व सिद्धान्त रूप से स्वीकार किया गया है, बल्कि सभी कवियों ने अपने काव्य में रस योजना हेतु अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया है; और कालान्तर में आचार्यों ने भी रस का सांगोपांग विवेचन करना अपना कर्तव्य स्वीकार किया है।

---

१. काव्यस्यात्मा स एवार्थः तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः शोकत्वमागतः। ध्वनिकारिका १. ५

२. (क) कवि व्यापारो हि विभावादिसंयोजनात्मा रसाभिव्यक्त्यव्यभिचारी काव्यमुच्यते। व्यक्तिविवेक पृ० ९६।

(ख) तस्य रसात्मताभावे मुख्यवृत्त्या काव्यव्यपदेश एव न स्यात्। वही पृ० ९८.

(ग) रसात्मकं च काव्यम्। वही पृ० १२६

३. रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्। बाल्मीकि रामायण १. ४. ९

४. नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्त्तते। नाट्यशास्त्र ६. ३२

आचार्य भरत के अनुसार शृङ्गार हास्य करुण रौद्र वीर भयानक बीभत्स और अद्भुत ये आठ रस काव्य या नाट्य में निबद्ध होते हैं। आचार्य मम्मट ने इनके अतिरिक्त शान्त रस को भी स्वीकृति दी है। आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में इनके अतिरिक्त वत्सल नामक एक अतिरिक्त रस को भी स्वीकृति दी गयी है। वैष्णवधर्म के प्रचार के अनन्तर जब विष्णुभक्ति प्रधान अनेक काव्यों और नाटकों की रचना होने लगी तो उनकी समीक्षा करने वाले आचार्यों द्वारा भक्तिरस के नाम से ग्यारहवें रस को भी स्वीकार किया गया है।[1] इनके अतिरिक्त भाव रसाभास भावाभास भावोदय भावशान्ति भावसन्धि और भावशवलता भी रस के समान ही चारुत्वातिशय के हेतु माने जाते हैं।

रसों की अभिव्यक्ति के लिए कवि और नाटककार अपनी रचना में विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारिभाव की योजना करता है, जिनके संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रस की इस निष्पत्ति का स्वरूप क्या है, इस प्रसंग में भरतसूत्र के व्याख्याकार भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त के अलग-अलग सम्प्रदाय रहे हैं। प्रस्तुत अवसर पर उन सम्प्रदायों की चर्चा करना अभीष्ट नहीं है, किन्तु भरत से लेकर उत्तर काल तक सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है कि रसयोजना के लिए कवि विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारिभावों की योजना करता है। इनके संयोग से काव्यगत रति आदि स्थायिभावों का रस के रूप में आस्वाद होता है। इस रस के अवबोध के लिए स्थायिभाव विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारिभावों का परिचय आवश्यक हुआ करता है।

रसों की संख्या के अनुसार ही स्थायी भाव भी पहले आठ स्वीकार किये गये थे, किन्तु कालान्तर में यह संख्या भी बढ़कर ग्यारह हो गयी है। रति हास शोक क्रोध उत्साह भय जुगुप्सा विस्मय निर्वेद वत्सल एवं भक्ति ये ग्यारह भाव कहाते हैं।

विभाव—विभाव दो प्रकार के होते हैं :—आलम्बन और उद्दीपन। रस विशेषतः शृंगार रस का आश्रय नायक होने पर नायिका एवं नायिका के आश्रय होने पर नायक आलम्बन विभाव हुआ करते हैं। नदी, वन, पर्वत, सूर्योदय, चन्द्रोदय तथा चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं। इन्हें विभाव इसलिए कहा जाता है कि ये रसों का विभावन करते हैं, लोक में ये रति आदि के उद्बोधक होते हैं, इसीलिए काव्य या नाटक में ये रति का विभावन करा पाते हैं।[2]

---

१. अब साहित्य में कुल ये ११ रस माने जाते हैं—शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानक बीभत्स अद्भुत शान्त वात्सल्य और भक्ति। काव्यांग दर्पण पृ० १२५

२. रत्याद्युद्‌बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः। साहित्यदर्पण ३. २९

अनुभाव—स्थायिभावों का अनुभव कराने वाले भावों को अनुभाव कहते हैं। लोक जीवन में जो रत्यादिभावों के कार्य कहे जाते हैं, उन भावों को ही काव्य या नाटक में अनुभाव कहते हैं।[१] ये अनुभाव स्थायिभाव के कार्यरूप होने से शरीर के आश्रित होते हैं, यथा-कटाक्ष भ्रू विक्षेप आदि नायिका की शारीरिक चेष्टाएँ। इन्हें वाह्य क्रिया भी कह सकते है। वाह्य चेष्टाओं का अनुकरण बिना किसी अभ्यास के अनायास किया जा सकता है। कुछ चेष्टाएँ ऐसी होती है, जो भावजन्य हैं। सामान्यत: सर्वसाधारण उनका अनुकरण नहीं कर सकता। विशिष्टभाव विशेष की स्थिति में वे स्वतः सब में ही उत्पन्न होती हैं, किन्तु उनके अनुकरण के लिए अत्यधिक साधना की अपेक्षा रहती है। स्तम्भ स्वेद रोमांच आदि इसी प्रकार की चेष्टाएँ है। सत्त्व से उत्पन्न होने के कारण काव्य-नाट्य-शास्त्र के आचार्यों ने इन्हें सात्त्विक भाव नाम से पृथक् अभिहित किया है।[२] फिर भी अनुभावों के अन्तर्गत ही इनकी गणना की जाती है। स्तम्भ स्वेद रोमांच स्वरभंग कम्पन वैवर्ण्य अश्रु एवं प्रलय ये आठ सात्त्विकभाव माने जाते हैं।[३]

व्यभिचारिभाव

व्यभिचारिभाव भावावस्था की आन्तर चेष्टाएं हैं, ये विविध रसों में विद्यमान रहती है।[४] किन्तु ये यावद्रस स्थायी नहीं होतीं, कभी उत्पन्न होती हैं, और कभी निमग्न हो जाती है।[५] रोमांच आदि सात्त्विक भाव भी विविध रसों में विद्यमान रहते हैं तथा चिरस्थायी नहीं होते, तथापि वे इनसे अभिन्न नहीं हैं, क्योंकि रोमांच आदि

---

१. उद्बुद्धकारणैः स्वैः स्वैःबहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके च कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः। वही ३.१३२-१३३

२. (क) विकाराः सत्त्वसम्भूताः सात्त्विकाः परिकीर्त्तिताः। सा० द० ३. १३४
सत्त्वं नाम स्वात्मविश्रामप्रकाशकारी कश्चनान्तरो धर्मः। सा० द० वृत्ति ३. १३४
(ख) रजस्तमोभ्यामसंस्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते। सरस्वती कंठाभरण पृ० २३६।

३. स्तम्भःस्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलयः इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥ सा० द० ३. १०५

४. इतस्ततो रसेषु संचारित्वमनेकरसनिष्ठत्वमनेकरसव्याप्यत्वं व्यभिचारित्वम्। रसतरंगिणी पृ० ६३

५. विशेषादाभिमुख्येन चरणाद् व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः॥ सा० द० ३. १४०

शारीरिक चेष्टाएँ हैं, जब कि समस्त व्यभिचारिभाव आन्तर हैं।[1] ये व्यभिचारिभाव स्वभावतः यद्यपि स्थायिभाव के साथ उन्मग्न निमग्न भाव से रहा करते है, किन्तु कभी-कभी वे स्वयं भी प्रधान रूप से व्यंजित होते हैं। उस समय उन्हें भाव के नाम से रस कोटि में आस्वाद्य स्वीकार किया जाता है।[2] ये व्यभिचारिभाव चाहे व्यभिचारिभाव के रूप में रहें चाहे भाव के रूप में आस्वाद्य हो रहे हों, प्रत्येक स्थिति में स्थायिभावों की भाँति ही इनकी भी विभावादि के द्वारा ही व्यंजना से प्रतीति होती है। व्यभिचारिभाव कुल तेंतिस हैं—निर्वेद ग्लानि शंका असूया मद श्रम आलस्य दैन्य चिन्ता मोह स्मृति धृति व्रीडा चपलता हर्ष आवेग जड़ता गर्व विषाद औत्सुक्य निद्रा अपस्मार स्वप्न अमर्ष अवहित्था उग्रता मति व्याधि उन्माद मरण त्रास एवं वितर्क।[3]

रसादि की निष्पत्ति के सन्दर्भ में विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारिभावों की योजना ही कवि करता है, एवं विभावदि के संयोग से स्थायिभाव रस के रूप में आस्वादित होता है,[4] अतः कवि इनकी योजना के लिए ही प्रायः सचेष्ट रहता है, यह पहले कहा जा चुका है। विभिन्न रसों में विभावादि प्रायः नियत से हैं, अतः कवि जिस रस का आस्वादन सहृदय पाठक को कराना चाहता है, उस रस के अनुकूल ही अपने काव्य में विभाव आदि की योजना करता है। कुछ अनुभाव व्यभिचारिभाव आदि यद्यपि विविध रसों की व्यंजना के साधन होते हैं, तथापि विभाव आदि समस्त सामग्री के रहने पर कभी भी रसान्तर की निष्पत्ति का भ्रम नहीं होता और अपेक्षित रस का ही आस्वादन होता है। कभी-कभी रस योजना के लिए आवश्यक विभावादि में अन्यतम का यदि शाब्द अभिधान नहीं होता है, तो भी उसकी आर्थ उपस्थिति स्वतः हो जाती है।

शृङ्गार रस

शृंगार पद शृंग एवं आर पदों के संयोग से बना है। शृंग का अर्थ है—कामोद्रेक, तथा आर का अर्थ है—प्राप्ति। इस प्रकार शृंगार पद का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है कामोद्रेक की प्राप्ति। भरत के अनुसार शृंगार रति स्थायि भा-

---

१. न च रोमांचादावतिव्याप्तिस्तेषामभि संग्राह्यत्वात्। ते च भावाः शारीरा व्यभिचारिण, एते त्वान्तरा व्यभिचारिण इयान्विशेषः। रसतरं० पृ० ६३
२. व्यभिचारी तथाञ्जितः, भाव प्रोक्तः। काव्य प्रकाश ४'३५ पृ० ९४
३. (क) रसकौस्तुभकारिका ७५-७९ (ख) काव्य प्रकाश ४'३१–३४
४. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। नाट्यशास्त्र अ० ६ पृ० ८२

से उद्बुद्ध होता है। वह उज्वल वेश वाला है।[1] इसे उज्वल वेष वाला क्यों कहा जाता है, अथवा उज्वल वेष वाले रस को शृंगार क्यों कहते हैं? इस सम्बन्ध में आचार्य भरत का कहना है कि संसार में जो कुछ भी शुचि मेध्य एवं दर्शनीय है उसकी उपमा शृंगार से दी जाती है, जो भी व्यक्ति उज्वल वेष वाला होता है, उसे शृंगारवान् कहा जाता है। जिस प्रकार गोत्र कुल आचार आप्त-उपदेश से व्यक्तियों के नाम सिद्ध होते हैं, उसी प्र ार इन रसों या भावों एवं नाट्याश्रित अन्य अर्थों के भी आचार से उत्पन्न आप्त-उपदेश सिद्ध नाम दिये जाते हैं। इसीप्रकार आचार-सिद्ध हृदय को प्रिय एवं उज्वल वेषात्मक होने से इसे शृंगार रस कहते हैं। यह स्त्री पुरुषों के मध्य रहता है। उत्तम प्रकृति वाले जनों में रहने से ही यह रस कहा जाता है।[2]

धनिक के शब्दों में रम्य देश काल वेष एवं भोग्य पदार्थ आदि के सेवन से परस्पर अनुरक्त युवक युवतियों को जो प्रमोद होता है, वह **रतिभाव** कहाता है। उसे ही मधुर अंगचेष्टा आदि से परिपुष्ट होने पर शृंगार रस कहा जाता है।

शृंगाररस के आलम्बन सदा ही नायक नायिका में अन्यतर होते हैं, शेष अन्य उसका आश्रय रहता है। पुष्पित उपवन चन्द्रिका मलयपवन भ्रमरझंकार आदि इसके उद्दीपन विभाव, भ्रू विक्षेप अंगविन्यास आदि अनुभाव, स्वेद रोमांच आदि सात्त्विकभाव तथा उग्रता मरण आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर सभी व्यभिचारी भाव इसके पोषक हुआ करते हैं। रति इसका स्थायी भाव होता है। इसका वर्ण श्याम और देवता विष्णु माना जाता है।

शृङ्गार रस के भेद

भरत हेमचन्द्रसूरि रामचन्द्रगुणचन्द्र मम्मट भानुदत्त वेणीदत्त आदि प्रायः सभी आचार्यों ने इसके दो भेद स्वीकार किये हैं, प्रथम वह जिसमें नायक-नायिका का मिलन विद्यमान हो, और दूसरा वह जहाँ दोनों परस्पर वियुक्त हों। प्रथम को संयोग या संभोग शृंगार नाम से अभिहित किया जाता है, और दूसरे प्रकार को

---

१. तत्र शृंगारो नाम रतिस्थायिभावप्रभव उज्वलवेषात्मकः। ना० शा० पृ० ८४।

२. यथा-किंचिल्लोके शुचि मेध्यं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते। यस्ताव-दुज्वलवेषः स शृंगारवानित्युच्यते। यथा च गोत्र कुलाचारोत्पन्नान्याप्तो-पदेशसिद्धानि पुंसां नामानि भवन्ति, तथैवैषां रसानां च नाट्याश्रितानां चार्थानामाचारोत्पन्नान्याप्तोपदेशसिद्धानि नामानि। एवमेष आचारसिद्धो हृद्योज्वलवेषात्मकत्वाच्छृंगारो रसः। स च स्त्रीपुंसहेतुक उत्तमयुवप्रकृतिः। वही० पृ० ८४-८५।

विप्रलंभ विप्रयोग या वियोग शृङ्गार नाम से स्मरण किया जाता है। धनंजय एवं शारदातनय ने इनके अतिरिक्त अयोग नामक भेद की भी कल्पना की है, जिसमें नायक में श्रवणानुराग तो हो चुका है, किन्तु वे अभी मिल नहीं सके हैं। विप्रलम्भ शृङ्गार में वियोग के हेतु के आधार पर कुछ आचार्य भेद करते हैं, उनके अनुसार वह अभिलाषहेतुक विरहहेतुक ईर्ष्याहेतुक प्रवासहेतुक और शापहेतुक भेद से पाँच प्रकार का हो सकता है। वेणीदत्त ने प्रवास के काल भेद के आधार पर भवत्प्रवासहेतुक भाविप्रवासहेतुक एवं भूतप्रवासहेतुक भेद से तीन अन्य प्रभेदस्वीकार किये हैं। इसी प्रसंग में विश्वनाथ भानुदत्त वेणीदत्त आदि आचार्यों ने अभिलाष चिन्ता स्मृति गुण कथन उद्वेग प्रलाप उन्माद व्याधि जडता एवं मृति इन दस काम दशाओं का भी वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त विश्वनाथ ने करुण विप्रलम्भ नाम से एक अन्य भेद की भी कल्पना की है। यह उस स्थिति में स्वीकार किया जाता है, जब नायक नायिका में अन्यतर का परलोक गमन हो जाए, किन्तु किसी प्रकार उसके पुनरुज्जीवित होने की संभावना बनी रहे।[1] विलम्भशृङ्गार करुणविप्रलम्भशृङ्गार एवं करुणरस में अन्तर यह है कि—

१. जब नायक नायिका में दोनों जीवित हैं, किन्तु किसी कारण वियुक्त हैं तथा उनके मिलन की संभावना है, उस स्थिति में रतिभाव का परिपोष होने पर विप्रलम्भ शृङ्गार रस होगा।

२. जब नायक नायिका में अन्यतर परलोकवासी हो चुका है, किन्तु आकाशवाणी अथवा आशीर्वाद आदि से उसके पुनर्जीवित होकर मिल जाने की सम्भावना है, उस स्थिति में रति भाव का परिपोष होने पर विप्रलम्भ शृङ्गार रस होगा।

३. जब नायक नायिका में अन्यतर की मृत्यु हो चुकी है और इसी कारण मिलन की सम्भावना सर्वथा समाप्त हो चुकी है, अतः वहाँ रति का परिपोष न होकर शोक का परिपोष होता है, तब करुणरस स्वीकार किया जाता है।

करुण विप्रलम्भ के उदाहरण के रूप में बाणकृत कादम्बरी से महाश्वेता वृत्तान्त को देखा जा सकता है।

हास्यरस

हास्यरस का स्थायिभाव हास है, इसका आलम्बन विकृत आकार वाणी वेष

---

१. यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्ततो भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः॥ सा० द० ३.२०९

आदि से युक्त व्यक्ति होता है। आलम्बन की चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। ओष्ठ नासिका और कपोलों का स्फुरण मुख का विकास आदि अनुभाव, तथा आलस्य अवहित्था तन्द्रा स्वप्न प्रबोध असूया अश्रु हर्ष चपलता आदि इसके व्यभिचारिभाव होते हैं। प्राचीन आचार्य भरत ने आश्रय की प्रकृति के आधार पर इसे उत्तम मध्यम अधम तीन वर्गों में रखते हुए विकास क्रम के आधार पर इसके छः भेद स्वीकार किये हैं।[1]

१. उत्तम—स्मित एवं हसित
२. मध्यम—विहसित एवं उपहसित
३. अधम—अपहसित एवं अतिहसित

करुण रस

करुण रस का स्थायिभाव शोक है, विनष्ट प्रियजन एवं विनष्ट ऐश्वर्य इसका आलम्बन होता है। विनष्ट प्रियजनविषयक दाह आदि क्रियाएँ, उनके स्थान वस्त्र आभूषण आदि वस्तुएँ, उनके कार्यो का श्रवण स्मरण आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। रुदन दैव-निन्दा भूमिपतन उच्छ्वास कम्प स्तम्भ प्रलाप आदि इसमें अनुभाव होते हैं। निर्वेद मोह अपस्मार व्याधि ग्लानि स्मृति दैन्य विषाद जडता उन्माद चिन्ता आदि इसमें व्यभिचारिभाव हो सकते हैं। इसका वर्ण कपोत रंग तथा इसका देवता यम माना जाता है।

रौद्ररस

रौद्ररस का स्थायिभाव क्रोध है। शत्रु अथवा उसके पक्षपाती आलम्बन विभाव, शत्रु द्वारा किये गये अनिष्ट कार्य अथवा प्रयुक्त अपशब्द इसमें उद्दीपन विभाव होते हैं। नेत्रों का लाल होना, भौहों का टेढ़ा होना, दांत किट-किटाना, होठों का चबाना, कठोरभाषण शस्त्र उठाना, तर्जन कम्प तथा रोमांच आदि इसमें अनुभाव हो सकते हैं। इसका देवता रुद्र तथा वर्ण रक्त माना गया है।

वीर रस

वीररस का स्थायिभाव उत्साह होता है। शत्रु दीनयाचक तीर्थ पर्व आदि इसके आलम्बन विभाव हैं। शत्रु का पराक्रम याचक की दीनता आदि इसके उद्दीपन हैं। रोमाञ्च गर्व-वचन आदर सत्कार सान्त्वना इत्यादि इसमें अनुभाव होते हैं, तथा गर्व धृति स्मृति दया हर्ष मति असूया अमर्ष उग्रता आवेग आदि इसमें व्यभिचारिभाव हो सकते हैं। इसका वर्ण स्वर्णिम तथा देवता इन्द्र माना जाता है।

---

१. स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितंञ्चाथ हसितमतिहसितम्।
द्वौ-द्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्यमाधमप्रकृतौ ॥ ना० शा० ६.५२

भरत ने वीररस के तीन भेद माने हैं—दानवीर धर्मवीर एवं युद्धवीर।[1] दशरूपककार धर्मवीर के स्थान पर दयावीर रखना चाहते हैं। विश्वनाथ ने एक साथ धर्मवीर एवं दयावीर दोनों को मान कर वीर के चार प्रकार माने हैं।[2] पंडितराज जगन्नाथ ने इनके अतिरिक्त सत्यवीर क्षमावीर एवं बलवीर आदि भेदों की भी संभावना स्वीकार की है। वेणीदत्त ने वीररस के विश्वनाथ स्वीकृत केवल चार प्रकार ही स्वीकार किये हैं।

भयानकरस

भयानक रस का स्थायिभाव भय है। भय के कारणभूत बलवान् शत्रु व्याघ्र सर्प आदि इसके आलम्बन विभाव तथा श्मशान एकान्त निर्जनप्रदेश हिंसक-प्राणी की चेष्टाएँ अपनी असहाय अवस्था भयोत्पादक ध्वनि आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। स्वेद रोमाञ्च कम्पन वैवर्ण्य रुदन स्वरभंग पलायन आदि इसमें अनुभाव होते हैं। त्रास चिन्ता आवेग अपस्मार शंका ग्लानि दीनता जुगुप्सा आदि इसमें व्यभिचारिभाव हो सकते हैं। इसका वर्ण श्याम एवं देवता काल स्वीकार किया जाता है।

बीभत्सरस

बीभत्सरस का स्थायिभाव जुगुप्सा (घृणा) है। श्मशान शव रुधिर मज्जा आंतें पीव मांस दुर्गन्धित पदार्थ आदि घृणा उत्पादक वस्तुएँ इसके आलम्बन हैं। घृणास्पद की चेष्टाएँ, दुर्गन्ध, मक्खियों का भिनभिनाना, गिद्ध सियार आदि द्वारा मांस आदि नोचना, कीड़ों का बिलबिलाना आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। इसमें अनुभाव आंख मीचना, मुँह फेर लेना, थूकना, नाक सिकोड़ना, रोमाञ्च एवं कम्प आदि हो सकते है। मोह अपस्मार आवेग व्याधि ग्लानि जड़ता चिन्ता दैन्य वैवर्ण्य एवं उन्माद आदि इसमें व्यभिचारिभाव होते हैं।[3] इसका वर्ण नीला तथा देवता काल स्वीकार किया जाता है।

अद्भुतरस

अद्भुतरस का स्थायिभाव विस्मय है। विस्मय एक प्रकार का विस्तार है। इसे ही आश्चर्य भी कहते हैं। अलौकिक एवं असामान्य वस्तुएं इसके आलम्बन विभाव तथा उनका दर्शन, उनके माहात्म्य का श्रवण विवेचन उद्दीपन विभाव होते हैं। निर्निमेष विलोकन, दांत के नीचे अंगुली दबाना, विस्फारित नेत्र एवं विस्फारित

---

१. दानवीरं धर्मवीरं युद्धवीरं तथैव च।
रसं वीरमपि प्राहुस्तज्ज्ञास्त्रिविधमेव हि॥ ना० शा० ६.७९

२. स च दयारणदानयोगात् त्रेधा। दशरूपक ४.७२

३. स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्। सा० द० ३.२२४

मुख हो जाना, स्तंभ, स्वरभंग एवं रोमाञ्च आदि इसमें अनुभाव होते हैं। वितर्क आवेग हर्ष भ्रान्ति शंका चिन्ता चपलता औत्सुक्य जड़ता दैन्य आदि इसमें व्यभिचारि भाव होते हैं। इसका वर्ण पीत तथा देवता ब्रह्म स्वीकार किया जाता है। परवर्त्ती आचार्यों के अनुसार इसका देवता गन्धर्व माना जाता है।

शान्तरस

शान्तरस का स्थायिभाव निर्वेद है।[1] परवर्त्ती विश्वनाथ आदि आचार्यों ने निर्वेद के स्थान पर शम को इसका स्थायिभाव माना है।[2] वेणीदत्त भी विश्वनाथ का अनुसरण करते हैं। जगत्‌की निस्सारता और नश्वरता का बोध एवं परमात्मतत्त्व का ज्ञान इसका आलम्बन तथा तीर्थप्रदेश साधुसत्संग शास्त्रश्रवण एकान्तप्रदेश आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। संसार के दुःख में दुःखी होना, त्याग की तत्परता, पुलक अश्रु रोमांच आदि इसके अनुभाव हैं। धृति हर्ष मति विबोध ग्लानि दैन्य उद्वेग असूया जड़ता आदि इसमें व्यभिचारिभाव होते हैं। इसका वर्ण श्वेत तथा देवता नारायण स्वीकार किया गया है।

वात्सल्यरस—

वत्सल या वात्सल्य रस विश्वनाथ आदि परवर्त्ती आचार्यों की उद्भावना है। इस रस का स्थायी भाव वत्सलता (अपत्य स्नेह) है। इसका आलम्बन विभाव शिशु या बालक होता है, तथा उद्दीपन उसकी चेष्टाएँ; यथा भोले वचन, तुतली बोली आदि होते हैं। इसके अनुभाव स्नेहदृष्टि, आलिङ्गन करना, चुम्बन करना, गोद में लेना, रोना, विलाप करना आदि होते हैं। इसमें व्यभिचारि भाव हर्ष गर्व स्मृति औत्सुक्य मोह शंका आवेग जड़ता विषाद एवं उन्माद आदि हो सकते हैं। शुभ्रपीत (पद्मगर्भ छवि) इसका वर्ण है तथा षोडशमातृकाएँ इसकी देवता हैं। वेणीदत्त ने वात्सल्यरस की कोई चर्चा नहीं है।

भक्तिरस

भक्तिरस भी परवर्त्ती आचार्यों की कल्पना है। रूप गोस्वामी को इस रस की प्रतिष्ठाका श्रेय है। इसका स्थायिभाव भगवद्विषयक रति है। ईश्वर अथवा उसके अवतार राम कृष्ण आदि इसके आलम्बन विभाव होते हैं, भक्तों की संगति, भगवान् के सगुण रूपों का सौन्दर्य, ईश्वर के अद्भुत कार्य एवं अलौकिक गुण इसके उद्दीपन विभाव होते हैं। नेत्र का विकास गद्गद्-वचन रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव होते हैं। हर्ष औत्सुक्य धृति मति निर्वेद गर्व आदि इसमें व्यभिचारि भाव हो सकते हैं। प्राचीन

---

१. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। का० प्र० ४.४७ पृ० ७४,

२. शान्तः शमस्थायिभावः। सा० द० ३,२४५,

आचार्यों ने देव आदि विषयक रति को भाव के नाम से स्मरण किया था।[३] स्वतन्त्ररस के रूप में उन्होंने इसे कोई नाम नहीं दिया था। वेणीदत्त ने इसकी कोई चर्चा नहीं की है।

रसकौस्तुभ की विषयवस्तु

रसकौस्तुभ नाम से ही स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में रस विवेचन ही प्रधान रूप से हुआ है, और इसी प्रसङ्ग में लेखक ने जिन उपादानतत्त्वों को रस के लिए आवश्यक समझा है, उसका इसमें गुम्फन किया है।

वेणीदत्त ने पूर्व आचार्यों द्वारा स्वीकृत केवल नव रसों का ही वर्णन किया है। रसों में शृंगार रस सर्व प्रमुख है, और उसे ही रसराज कहा जाता है। इसको रसराज कहने के निम्नलिखित कारण माने जा सकते हैं :—

(१) इसके आश्रय एवं आलम्बन में विपर्यय कर देने पर भी रस निष्पत्ति में कोई व्याघात नहीं होता। अन्य किसी रस की यह स्थिति नहीं है।

(२) इस रस को प्राधान्य देकर सर्वाधिकार रचनाएं हुई हैं, समस्त रसों की रचनाएँ मिल कर भी इस रस की कविताओं की अपेक्षा कम ही होंगी।

(३) यह रस ही सहृदयों को सर्वाधिक प्रिय है।

(४) पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म अर्थ काम और मोक्ष में काम के रूप में शृंगार की साक्षात् स्वीकृति है, अतः शृंगाररस पुरुषार्थ चतुष्टय में अन्यतम का साक्षात् साधक है।

इसी कारण संभवतः सर्वाधिक रचनाएं शृंगाररस प्रधान ही हुई हैं। वेणीदत्त ने भी रसकौस्तुभ में शृंगार और उससे संबद्ध विषयवस्तु की ओर ही सर्वाधिक ध्यान दिया है। दूसरे शब्दों में यदि यह कहा जाए कि सर्वरस सामान्य विषय की चर्चा करने के अनन्तर अधिकांश ग्रन्थ में कवि ने शृंगार रस की सामग्री की ही चर्चा की है, तो अनुचित न होगा। उदाहरणार्थ रसों के परिगणन के अनन्तर शृंगार रस का उपक्रम करके उसके भेद संभोग और विप्रलम्भ का नाम लेकर विप्रलम्भ के भेद प्रभेदों की विवेचना, मान हेतुक विप्रलम्भ के सन्दर्भ में मान भङ्ग के उपायों का, तथा इसी प्रसङ्ग में दस काम दशाओं का सोदाहरण परिचय दिया है। तदन्तर विभाव विवेचन के सन्दर्भ में बयालिस नायिका भेदों का सोदाहरण वर्णन किया गया है। इसी प्रकार शृंगाररस के नायक एवं नायिका तथा नायिका के सहायकों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। पुनः भाववर्णन के उपक्रम में आठ सात्त्विक भावों के उदाहरण

---

३. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः। भावप्रोक्तः ..का० प्र० ३·५४।

प्रस्तुत किये गये है। स्मरणीय है कि इस सन्दर्भ में वेणीदत्त ने केवल प्रलय-सात्त्विक भाव का लक्षण दिया है, जो साहित्यदर्पणगत लक्षण से अक्षरशः अभिन्न है;अन्य स्वेद आदि के केवल उदाहरण ही दिये हैं, लक्षण नहीं, जबकि उनके भी लक्षण साहित्य-दर्पण में सुलभ रहे हैं। इसी प्रसङ्ग में ग्रन्थकार ने स्थायिभावों एवं व्यभिचारि-भावों का एवं उन्नीस हावों का सोदाहरण विवरण दिया है, तथा ग्रन्थ के अन्तिम बत्तीस पद्यों में तीन भेदों सहित वीररस का एवं भेदों की चर्चा किये बिना करुण अद्भुत हास्य भयानक बीभत्स रौद्र एवं शान्त क्रम से शेष सात रसों का विवरण प्रस्तुत किया है।

इस समग्र रचना में किसी भी विषय के प्रसङ्ग में ग्रन्थकार ने समीक्षा पद्धति का आश्रय नहीं लिया है: इसलिए जहाँ यह ग्रन्थ एतद्विषयक संक्षिप्त एवं प्रारम्भिक जानकारी चाहने वालों के लिए अत्यन्त उपादेय है, वहीं यह समीक्षाप्रवण पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने में सर्वथा असमर्थ है। क्योंकि ग्रन्थकार का उद्देश्य रसशास्त्र लिखना नहीं रहा है, वह तो इस माध्यम से कुछ काव्य करना चाहता रहा है। अतः इसमें समीक्षात्मक शैली का अभाव अत्यन्त स्वाभाविक ही कहा जाएगा। इस समस्त ग्रन्थ में एक सौ तिरपन लक्षणों द्वारा रसविषयक सामग्री के लक्षण एवं दो सौ आठ पद्यों में उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। जैसा कि ग्रन्थकार ने ग्रन्थारम्भ में :—

श्रीकृष्णं सदयोदारं हृदये धर्तुमिच्छया।
वेणीदत्तेन यत्नेन क्रियते रसकौस्तुभम् ॥ श्लो० २ ॥

पद्य द्वारा स्वयं प्रतिज्ञा की है, समस्त ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की मनोरम लीला अथवा उनके गुणों का कीर्त्तन उदाहरणों में हुआ है। इस प्रसङ्ग में वेणीदत्त की कवित्व शक्ति नितरां प्रशंसनीय है। किन्तु इसके साथ यह भी स्मरणीय है कि वेणीदत्त की गम्भीर प्रकृति उन्हें हास्य रस की रचना में आगे नहीं बढ़ने देती। हास्य के प्रसङ्ग में उन्होंने दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

भृशं दृष्ट्वा ताराः नभसि पृथुहाराय रुचिराः
क्षणं पाणावेताः नय मम समस्ताश्च जननि।
प्रवलगन्तं सद्यो द्रुतमिति विधायातिरुदितम्
यशोदा पश्यन्ती व्रजपरिवसन्ती विहसति ॥ श्लो० २००॥

प्रस्तुत पद्य में विहसति कथन के आधार पर ही ग्रन्थकार ने हास्य रसकी परिपक्वता मान ली है, जबकि पद्य गत समस्त सामग्री वात्सल्य रस अथवा अपत्यविषयक रतिभाव के परिपोष में ही अधिक समर्थ हैं। इसी प्रकार इनके द्वारा उपस्थापित द्वितीय पद्य :—

केनापि मन्दनयनेन जरार्दितेन चूर्णभ्रमेण खलु काकमलं गृहीतम्।
दृष्ट्वेति बालनिचयः परितस्तदानीमुच्चैर्जहास परिहासभरं प्रकुर्वन् ॥श्लो० २०१॥

इत्यादि में भी 'जहास परिहासभरं प्रकुर्वन्' कथन के अतिरिक्त समस्त सामग्री हास्यरस के अनुकूल कम बीभत्स रस के अनुकूल अधिक है। क्योंकि काकमल (कौए की विष्ठा) को चूना मानकर खाना घृणा ही उत्पन्न करेगा। हां निकृष्ट पात्रों में हास्य की कुछ सृष्टि हो सकती है, किन्तु वह भी शुद्ध न होकर बीभत्स से संकीर्ण होगी। इसके अतिरिक्त किसी भी रस का स्वशब्देन कथन भी दोषपूर्ण होता है, जैसी की आचार्य मम्मट की सुस्पष्ट-मान्यता है—

व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्द वाच्यता।
.........रसे दोषाः स्युरीदृशाः ॥ का० प्र० ७.६०–६२

अर्थात् व्यभिचारिभावों रसों स्थायिभावों का स्वशब्देन कथन आदि रस विषयक दोष माना जाता है। फलतः उपर्युक्त दोनों ही उदाहरणों को प्रशस्त कहसकना उचित न होगा। इतना होते हुए भी समग्र रूप से रसकौस्तुभ में उदाहरणों में वेणीदत्त की कवित्व प्रतिभा का साक्षात्कार कर कोई भी सहृदयपाठक मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किये बिना न रहेगा।

वेणीदत्त का स्थिति काल

कविवर वेणीदत्त के स्थिति काल के सम्बन्ध में किसी विवाद की सम्भावना नहीं है। मिथिला के पञ्जीकारों ने उनके वंश का जो चित्र निबद्ध किया है, उससे उनके सातवें पीढ़ी के वंशधरों की आज भी विद्यमानता पायी जाती है, पंजीकारों द्वारा निर्दिष्ट वंश परिचय भूमिका के अन्त में द्रष्टव्य है।

वेणीदत्त ने स्वयं भी रसकौस्तुभ के अन्त में अपने परिचय के सम्बन्ध में निम्नलिखित पद्य निबद्ध किया है :—

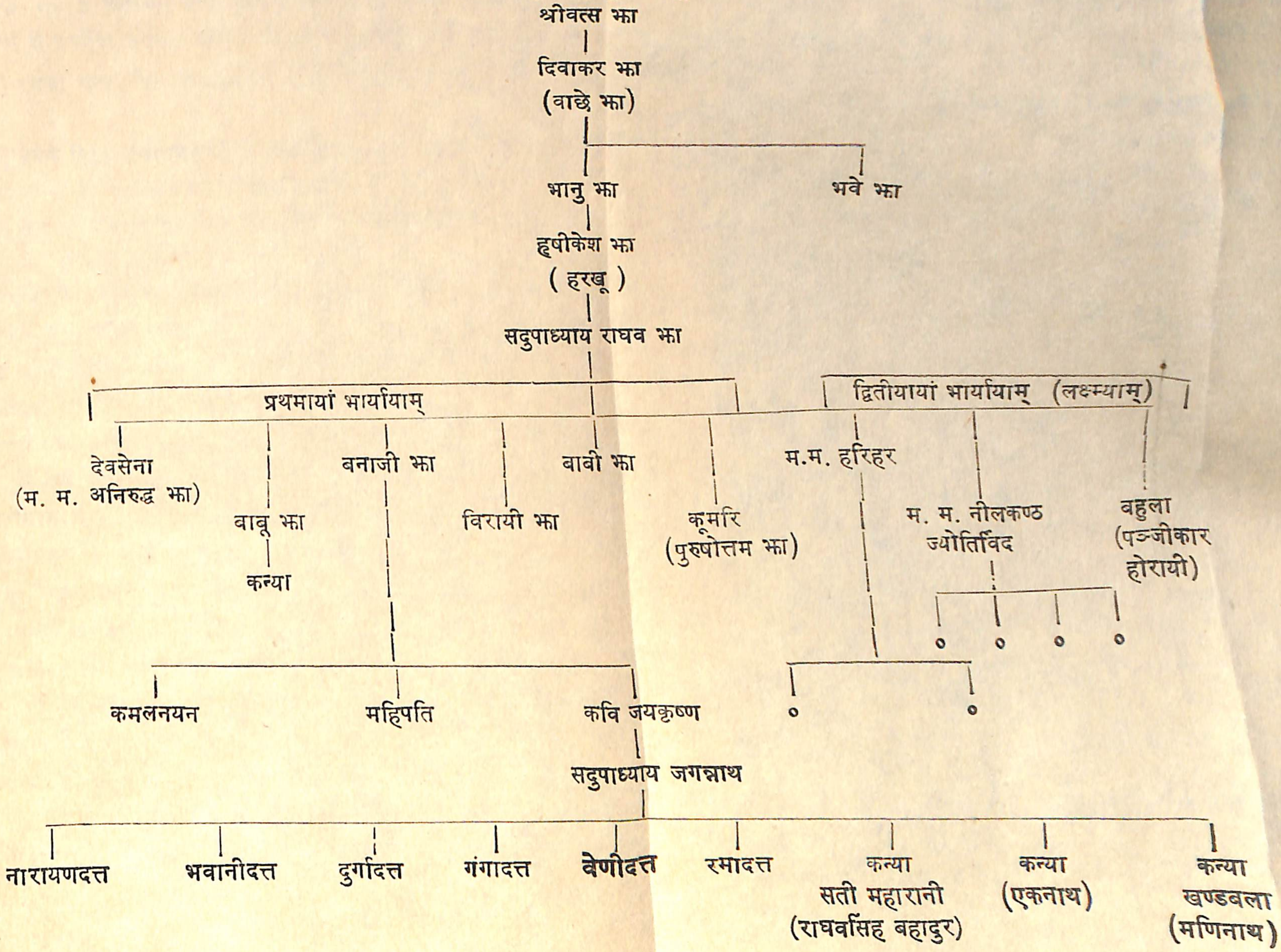
आसीद्यस्तीरभुक्तौ ललितकरमहावंशजश्चारुकर्मा
चञ्चच्छास्त्राब्जभानुः प्रथितवरयशाः श्री जगन्नाथशर्मा।
चक्रे तस्यात्मजन्मा मुरहरचरणाम्भोरुहासक्तचित्तो
वेणीदत्तः प्रयत्नादतिरुचिरतरं कौस्तुभं सद्रसानाम् ॥

अर्थात् तिरहुत प्रदेश में अत्यन्त उत्तम वंश में पवित्र चरित्र वाले विविध शास्त्रों के अतिशय उत्कृष्ट यशस्वी विद्वान् श्री जगन्नाथशर्मा हुए हैं, उनके पुत्र कृष्ण के परमभक्त वेणीदत्त ने इस रसकौस्तुभ की रचना की है।

इस पद्य से हमें वेणीदत्त के पिताका नाम जगन्नाथशर्मा था, यह स्वीकार करने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वेणीदत्तकृत अलंकारमंजरी के सम्पादक

रसकौस्तुभकर्त्तुः वेणीदत्तस्य वंशपरिचयः

करमहा-वेहटकुल संभूतः



कविशेखर बदरीनाथ (झा) शर्मा के अनुसार "वेणीदत्त तिरहुत के श्रीमत् सिद्धेश्वरी पीठ के निकट में स्थित सरिसव ग्राम से संलग्न हाटी उपग्राम में हुए थे। इनके पिता का नाम जगन्नाथशर्मा था। ये जगन्नाथशर्मा भर्तृहरि-निर्वेदनाटक, हरिहर सुभाषित आदि काव्यों के रचयिता श्री हरिहर उपाध्याय के कुल में उत्पन्न हुए थे, तथा अपने भानजे मिथिला नरेश श्री महाराज माधवसिंह के सभा पंडित थे।"[1] बदरीनाथशर्मा के उपर्युक्त कथन से हमें निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती है।

(१) इनका जन्म तिरहुत प्रदेश के सरिसव ग्राम के निकट हाटी ग्राम में हुआ था।

(२) इनके पिता जगन्नाथशर्मा करमहा बेहट मूल ग्रामवासी वत्सगोत्रीय प्रसिद्ध विद्वान् अनेक ग्रन्थों के रचयिता कवि हरिहरोपाध्याय के वंश में थे।

(३) इनकी बहन के पुत्र मिथिला नरेश श्री माधवसिंह थे।

(४) ये महाराज माधवसिंह के सभारत्न थे।

मिथिला के इतिहास के अनुसार माधवसिंह का शासन काल ११८३ हिजरी से १२१४ हिजरी अर्थात् १७७६ ई० से १८०७ ई० के मध्य रहा है; फलतः वेणीदत्त का समय भी अठारहवीं शती का उत्तरार्ध मानना चाहिए।

वेणीदत्त का वंश परिचय निम्मांकित है :—

प्रस्तुत ग्रन्थ रसकौस्तुभ अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी संयोगवश अब तक असम्पादित ही रहा है। गंगानाथ झा केन्दीय संस्कृत विद्यापीठ के शोध अधिकारी डा० किशोरीनाथ झा से चर्चा करते हुए इसकी ओर मेरा ध्यान गया, और जब मैंने इसके सम्पादन की इच्छा प्रगट की तो उन्होंने न केवल मेरी इच्छा का समर्थन किया, अपितु बहुत पहले वर्षाहर्ष काव्य के रचयिता कविवर लेखनाथ झा द्वारा विशिष्ट सम्पादन के बिना ही वितरण हेतु मुद्रित इस ग्रन्थ की एक प्रति भी लाकर दी। उक्त प्रति से प्रेस कापी तैयार कर लेने पर गंगानाथ झा विद्यापीठ में संगृहीत रसकौस्तुभ की मैथिली लिपि में विद्यमान पाण्डुलिपि से पाठ संशोधन में भी पूर्ण योगदान किया है। इतना ही नहीं वेणीदत्त के वंशवृक्ष को पञ्जीकारों से प्राप्त

---

(१) तीरभुक्तिजनपदप्रतीकं श्री १०८ श्री मत्सिद्धेश्वरी सान्निध्यप्रसिद्धसरिसवं सरिसवग्रामोपसंश्लिष्टं हाटी समभिधानस्थवसथमधिवसन् भर्तृहरिनिर्वेदनाटक ? हरिहरसुभाषितप्रभृति श्रव्यकाव्यानां प्रणेतुर्हरिहरोपाध्यायस्य श्रोत्रियोचितविद्यासदाचारचारुणि वात्सकरमहाकुले विश्वविश्रुतवैदुष्याज्जगन्नाथोपाध्यादुद्भूतः स्वस्त्रीयस्य मिथिलामहीमहेन्द्रश्रीमाधवसिंहस्य सभास्तारोमहाकविर्भगवद्भक्तो वेणीदत्त शर्मा···· रसकौस्तुभं····प्राणैषीत्।

अलंकारमंजरी उपन्यास—पृ० १

करके डा० झा ने मुझे प्राप्त कराया है। इस प्रकार मैं कृतज्ञतापूर्वक यह स्वीकार करना आवश्यक समझूंगा कि डा० किशोरनाथ झा के सत्सहयोग के द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न हो सका है; तदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए वेणीदत्त के शब्दों में ही मैं कहना चाहूँगा कि :—

प्रार्थये प्राञ्जलिर्भूत्वा सज्जनान्विमलाशयान्।
श्रीमद्भिश्चारुनयनैर्दृश्यतां रसकौस्तुभः। इति।

संकेत

क. गं० ना० झा के० संस्कृत विद्यापीठ पुस्तकालय में स्थित पाण्डुलिपि।

ख. लेखनाथ झा द्वारा वितरित प्रति।

रसकौस्तुभ-दीपिका

[ॐ नमः शिवाय ।]

कस्त्वं चक्री, व्रज निज पुरं नात्र सर्पस्य वासो,
गोपालोऽहं विपिनसविधे गोष्ठमस्ति प्रयाहि ।
पद्मेशोऽहं व्रजति न धरामण्डले चण्डरश्मिः,
कृष्णो राधावचनविजितः पातु वोऽभीष्टमित्थम् ।।१।।

तुम कौन हो ? मैं चक्री हूँ । तो तुम अपने पुर में ही जाओ, क्योंकि यहाँ सर्प का निवास नहीं है । [राधे !] मैं गोपाल हूँ । यहां जंगल के पास गोष्ठ है वहीं चले जाओ । [अरे तुमने नहीं पहचाना] मैं पद्मेश हूँ । [यह कैसे संभव है] उष्ण-किरण सूर्य पृथिवी पर कभी नहीं आता । इस प्रकार संवाद में राधा के वचनों से विजित (पराजित) श्रीकृष्ण तुम्हारे अभिलषित की रक्षा करें ।

श्रीकृष्णं सदयोदारं हृदये धर्त्तुमिच्छया ।
वेणीदत्तेन यत्नेन कल्प्यते रसकौस्तुभः ।।२।।

सदय एवं उदार श्री कृष्ण को हृदय में धारण करने की कामना से मैं वेणीदत्त यत्न पूर्वक रसकौस्तुभ की रचना कर रहा हूँ ।

सर्वथापि वृथा ज्ञेयाः प्रार्थनाः दुर्जने मुहुः ।
सुधाप्लावित चेतोऽपि फणी न विषमुज्झति ।।३।।

दुर्जन के प्रति बारम्बार प्रार्थना भी सर्वथा व्यर्थ है । क्योंकि अमृत से हृदय परिपूर्ण कर देने पर भी साँप विष रहित नहीं हो जाता । अर्थात् कितनी भी प्रार्थना से दुर्जन अपनी दुर्जनता नहीं छोड़ सकता ।

प्रार्थये प्राञ्जलिर्भूत्वा सज्जनान् विमलाशयान् ।
श्रीमद्भिश्चारुनयनैः दृश्यतां रसकौस्तुभः ।।४।।

निर्मल हृदय वाले सज्जनों से मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप अपने सुन्दर नेत्रों से रसकौस्तुभ का [एक बार] निरीक्षण अवश्य करें ।

अथ रसाः—

श्रृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः ।
बीभत्सश्च तथा रौद्रः शान्तो नव रसाः स्मृताः ॥१॥

अग्रिम कारिका में रसों का वर्णन किया जा रहा है :—

श्रृंगार वीर करुण अद्भुत हास्य भयानक बीभत्स रौद्र तथा शान्त ये नव (९) रस हैं।

अथ रस निरुपणम्ः—

यथोक्तं भरतेन—

विभावाद्यैः प्रतीतैश्च हृदयेषु सभासदाम् ।
अभिव्यक्तो दधिन्यायात्स्थायी रत्यादिको रसः ॥

यथा दुग्धमेवाम्लसंयोगेन दधिसंज्ञां भजते तथा स्थायी रत्यादिरेव भावः सभ्यात्मनि विभावादिसंयोगेन रसपदाभिधेयतां लभत इत्यर्थः ।

जैसा कि भरत ने कहा—सहृदय जनों अर्थात् सभासदों के हृदयों में प्रतीत होते हुए विभाव आदि के साहचर्य से दधिन्याय से अभिव्यक्ति होते हुए रत्यादिभाव रस कहाते हैं।

अर्थात् जिस प्रकार दूध अम्ल (दही आदि अम्ल) के संयोग से जमने पर दही संज्ञा को प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार रति इत्यादि स्थायी भाव विभाव आदि के संयोग से रस कहे जाते हैं।

भावानां स्थायिनां मध्ये रतिः श्रृङ्गार उच्यते ।
अस्यास्तु दैवतं विष्णुर्वर्णो वारिमुचां समः ॥२॥

स्थायिभावों में से रति स्थायिभाव [विभावादि के संयोग से] श्रृंगार कहाता है। इसका देवता विष्णु एवं वर्ण मेघों के सदृश श्याम है।

सम्भोगो विप्रलम्भश्च श्रृङ्गारो द्विविधो मतः ।
सम्प्रोच्यते विशेषेण लक्ष्यञ्च लक्षणन्तयोः ॥३॥

संयोग और विप्रलम्भ भेद से यह दो प्रकार का है। इन दोनों भेदों के परस्पर विशिष्ट लक्षण और उदाहरण अग्रिम पंक्तियों में कहे जा रहे हैं।

दर्शनस्पर्शनालापचुम्बनादिक्रियोद्भवम् ।
अन्योन्यं यत्सुखं यूनोः सम्भोगस्स समीरितः ॥४॥

दो युवक और युवती नायक और नायिका को परस्पर दर्शन संस्पर्श वातालाप एवं चुम्बन आदि क्रियाओं से जो सुख प्राप्त होता है, उसे सम्भोग शृंगार कहते हैं।

यथा—

शिखण्डानामाली वृतमुकुटशाली जलमुचाम्,
त्विषां गर्वध्वंसी ललितरववंशी वरधरः ॥
निधायाङ्के वामा[1]मसमशररामातिरुचिराम्,
मुदाऽरण्ये कृष्णो विततरतितृष्णो विहरति ॥४॥

यथाः—

मयूर पिच्छ के समूह से बनाए हुए मुकुट से सुशोभित, मेघों की कान्ति के गर्व को नष्ट करने वाले अर्थात् श्याम सुन्दर, मधुर ध्वनि वाली वंशी को धारण किये हुए, पञ्चशर अर्थात् काम की वशवर्ती अतएव रमणीय एवं रुचिर किसी सुन्दरी को अपनी अङ्क (गोद) में भर कर बढ़ी हुई रति की तृष्णा से युक्त श्री कृष्ण आनन्द पूर्वक बन में बिहार कर रहे हैं।

यथा वा—

अङ्के स्थिता धनरुचेर्मधुसूदनस्य,
पङ्केरुहायत[2]मुखी परिराजते स्म ।
शङ्के कलातिविमला शशिनः कलङ्क—
पर्यंकमध्यकलिता भुवि सङ्गतेति ॥५॥

इसी प्रकार (दूसरा उदाहरण) :—

घनश्याम मधुसूदन की गोद में स्थित, कमल की भाँति सुन्दर सुख वाली, [गोरी राधा] इसप्रकार सुशोभित हो रही थी, मानों चन्द्रमा की अति निर्मल कला कलङ्क के पर्यङ्क में बैठी हुई पृथिवी पर उतर आई हो।

---

१. 'रामं' इति क पुस्तके पाठः ।

२. 'रुहातियं' क

'पूर्वप्रणयिनो यूनोस्सन्तापो यो वियोगजः ।
विप्रलम्भः स सम्प्रोक्तस्सोऽपि पञ्चविधः स्मृतः ॥५॥

पहले प्रणय (प्रेम) से युक्त युवक युवतियों को वियोग से जो पीड़ा होती है उसे ही विप्रलम्भ कहा जाता है । यह पांच प्रकार का है ।

आद्योऽभिलाषहेतुस्स्यादन्यो विरहहेतुकः ।
तृतीयः शापहेतुः स्यादीर्ष्या हेतुश्चतुर्थकः ॥६॥
प्रवासहेतुकस्तावत्पञ्चमः समुदाहृतः ॥

विप्रलम्भ के इन पांच प्रकारों में प्रथम अभिलाषहेतुक अर्थात् प्रथम मिलन की कामना से ही होने वाली पीड़ा से युक्त, दूसरा विरहहेतुक, तीसरा शापहेतुक, चौथा ईर्ष्याहेतुक एवं पाँचवां प्रवासहेतुक विप्रलम्भ कहा जाता है ।

अभिलाषहेतुको यथा—

कपे भूयाद्रामो जलमुगभिरामोऽत्र कुशली,
स मे चेतो हर्षी झटिति रिपुकर्षी च समरे ।
यदङ्के निःशङ्कं सुखमतुलपर्यङ्कतुलिते,[1]
स्थिता भीमारण्येऽप्यधिकतर वन्ये कृतवती ॥६॥

हे, कपिराज ! मेरे चित्त को हर्षित करने वाले शत्रु का तत्काल विनाश करने वाले घनश्याम राम यहाँ कुशल पूर्वक हों, अतुलनीय पर्यंक के सदृश जिसकी [सुखद] गोद में स्थित होकर मैंने भयंकर बन में भी अतिशय सुख का अनुभव किया है ।

विरहहेतुको यथा :—

नहि प्रयास्यामि बहिर्मनागपि
प्रभाषितैरालि तवापि साम्प्रतम् ।
वियोगिनी संहननाभिकांक्षया
सुधाकरस्तापकरोऽयमुद्गतः ॥७॥

विरहहेतुकविप्रलम्भ :—

हे सखि, तुम्हारे कहने से भी इस समय मैं किञ्चित् काल (थोड़ी देर) के लिए भी बाहर नहीं जाऊँगी, क्योंकि वहाँ यह सुधाकर (चन्द्रमा) तापकारी बनकर मानों वियोगिनी नायिकाओं के संहार की कामना से बाहर निकला हुआ है ।

---

१. 'तुलितो' क.

शापहेतुको यथा—

प्रियं निरीक्ष्याद्भुतशापतापितं
समागतं केलि निकेतनान्तिकम्।[1]
चिराय पाण्डोर्नृपतेर्नितम्बिनी,
दधौ कपोले विमलेऽपि पाण्डुताम् ॥८॥

शापहेतुक विप्रलम्भ :—

मुनि के शाप से पीडित प्रिय को चिरकाल बाद केलिनिकेतन (बिहारभवन) के पास आया हुआ देखकर महाराज पाण्डु की पत्नी के निर्मल कपोल पीले पड़ गये।

भवन् भावी च भूतश्च प्रवासस्त्रिविधो मतः ॥७॥

प्रवास तीन प्रकार का हो सकता है—(१) भवत्प्रवास अर्थात् प्रारम्भ होता हुआ प्रवास, (२) भावी प्रवास अर्थात् जो निकट भविष्य में होने वाला है, तथा (३) भूतप्रवास (पूर्वकालीन प्रवास) अर्थात् जो प्रवास अब समाप्त हो चुका है।

भवत्प्रवास हेतुको यथा—

यामि यामीति वक्तव्यं न च प्राणेश्वराधुना।
तद्वर्णश्रवणाच्चेतो दिशं यामीं प्रधावति ॥९॥

भवत्प्रवास हेतुक विप्रलम्भ :—

हे प्राणप्रिय 'यामि' अर्थात् 'मैं जा रहा हूँ' ऐसा तुम न कहो, क्योंकि उन दो वर्णों को सुनकर मेरा चित्त यम की दिशा की ओर दौड़ने लगता है, अर्थात् इस जाने के शब्दों को ही सुनकर कहीं मैं मर न जाऊँ।

भाविप्रवासहेतुको यथा—

समन्तात्संजाते वनभुवि वसन्ते सुललिते
पिकानामालापे कलमलिकलापे विदधति।
दिगन्तं मे गन्ता पतिरथ निहन्ता मनसिजः
समीपेऽहं तावत्कमिह बत यास्यामि[2] शरणम् ॥१०॥

भावी प्रवास हेतुक विप्रलम्भ :—

वनभूमि में सर्वत्र वसन्त के छा जाने पर जबकि कोकिल मधुर आलाप कर रहे हैं, भ्रमर समूह गुंजार कर रहा है, उस समय मेरे पति परदेश जाने वाले हैं। हाय उस समय जब मन्मथ की मार मुझ पर पड़ेगी, तब मैं किसके समीप जाकर शरण प्राप्त कर सकूँगी।

---

१. °न्तिके ख.   २. 'धास्यामि' ख.

भूतप्रवासहेतुको यथा—

पिकानामुद्गीर्णं कलमतुलकर्णज्वरभरम्
सुधांशुस्सन्तापङ्कलयति च हा पङ्कजदलम् ।
तनुं तावद्धीरो व्यथयति समीरोऽपि नितराम्,
घनश्यामे वामे सपदि मम वामं जगदभूत् ॥११॥

कोयलों की कुहुक कानों को अतिशय व्यथित कर रही है। हाय, अमृत किरण चन्द्रमा भी आज हमें सन्तप्त कर रहा है, शीतोपचार की हेतु पंकज की पंखुडियां भी मुझे जला रही हैं, यह धीर समीर अङ्ग-अङ्ग को व्यथा दे रहा है हाय, आज घनश्याम के वाम हो जाने पर हमारे लिए सब जगत् वाम (उलटा) हो रहा है।

विप्रलम्भ भेद—

पूर्वानुरागको-मान-प्रवास-करुणात्मकः ।
विप्रलम्भो बुधैः कैश्चिच्चतुर्धा समुदीरितः ॥८॥

कुछ विद्वान् विप्रलम्भ के चार भेद निम्नलिखित प्रकार से करते हैं:—
(१) पूर्वानुरागहेतुक, (२) मानहेतुक, (३) प्रवासहेतुक, एवं (४) करुणात्मक।

पूर्वानुरागको यथा—

भवत्संवर्द्धितः स्नेहः साम्प्रतं मथुरागंते[1] ।
विरहाग्नि व्रजस्त्रीणां समुद्दीपयति स्फुटम् ॥१२॥

पूर्वानुराग-हेतुक विप्रलम्भः—

आपके द्वारा संवर्धित (बढ़ाया गया) यह स्नेह इस समय आपके मथुरा चले जाने पर व्रजवनिताओं की विरहाग्नि को प्रगट रूप से प्रदीप्त कर रहा है।

मानभेद—

प्रिये कोपः समाख्यातो मानः सोऽपि द्विधा पुनः ।
ईर्ष्यामानस्तथा ज्ञेयो मानः प्रणयसंज्ञकः ॥९॥[2]

मान :—

प्रिय के प्रति कोप को मान कहते हैं। यह मान भी दो प्रकार का है—
(१) ईर्ष्यामान, (२) प्रणयमान।

---

१. 'मथुरापते' क.

२. तुलनीय सा० द० ३·१९८

ईर्ष्यामान :—प्रिय का किसी अन्य नायिका के प्रति प्रेम देखकर अथवा प्रिय के शरीर पर परनायिका के साथ संभोग के चिह्नों को देखकर नायिका में जो मान उत्पन्न होता है, वह ईर्ष्यामान कहाता है।

प्रणयमान—प्रणयक्रीडा में किञ्चित् काल के लिए किये गये कृत्रिम कोप को प्रणयमान कहते हैं।

ईर्ष्यामानो यथा—

कथमथ बारं बारं लपितमुदारं हरे तनुषे।
त्वच्चरितं नखरेखा कुटिलविशेषादियं ब्रूते ॥१३॥

ईर्ष्यामान :—

हे कृष्ण, क्यों बार बार इस भांति मीठी बातें बनाते हो। यह कुटिल नख रेखा स्वयं तुम्हारे चरित्र का बखान कर रही है।

प्रणयमानात्मको यथा—

परस्परोदारकथासु मूकयोः,
पराङ्मुखीभूय नताननाब्जयोः।
परस्परस्मेरभृतोः सकोपयोः,
स्मरेण यूनोश्चरितं समीक्ष्यते ॥१४॥

प्रणयमान :—

परस्पर मधुर कथाओं में ही मूक भाव को प्राप्त, एक दूसरे से पराङ्मुख होकर मुख नीचा किये हुए, एक दूसरे को देखकर मुस्कुराहट भरे कोप (प्रणयमान) युक्त युवक प्रियुगल के चरित को काम देव ही देख रहा है।

मानभङ्गोपाया :—

उपायाः मानभङ्गाय षडेव समुदीरिताः।
साम दानं च भेदश्च नत्युपेक्षे रसान्तरम्[1] ॥१०॥

मान भङ्ग के छ उपाय बताये गये हैं—साम, दाम, भेद, नति अर्थात् चरणों पर गिरना, उपेक्षा और कथा परिवर्त्तन।

---

१. तुलनीय सा॰ द॰ ३.२०१

सामं यथा—

बाले कालेऽमरनरपतेः सन्निधिस्थे वसन्ते ।
मानम्लानं किमिह वदनं कर्त्तुमुत्कण्ठितासि ।।
कस्ते चित्ते निवसति मम प्रौढबाधोऽपराधो
यस्मादश्माधिककठिनतां तत्र तन्वि प्रतीमः ।।१५।।

साम :—

हे भोली ! सुरपति कामदेव के उपयुक्त इस अवसर पर जबकि बसन्त सा में उपस्थित हैं, अपना यह मुख क्यों मानवश मलिन करना चाहती हो। चित्त बाधा रूप कौन सा मेरा अपराध तुम्हारे चित्त में आ गया है कि वह (चित्त) पत्थ से भी अधिक कठोर प्रतीत हो रहा है।

दानं यथा –

मद्‌ गुम्फितामिमां तन्वि सुगन्धि कुसुमस्रजम् ।
कुचशम्भुर्गृहीत्वाद्य रूषन्ते हरतु द्रुतम् ।।१६।।

दान—

हे तन्वि ! मेरे द्वारा स्वयं गूंथी हुई इस सुगन्धित पुष्पमाला को ग्रहण करो ये उरोजरूपी शम्भु तुम्हारे रोष को तत्काल हर लें।

भेदो यथा—

पुनरपि शृणु हितवाचं[1] कुरु सखि मा चञ्चलं चेतः ।
मुरभिदि गतापराधे भवति न राधे तवोचितः कोपः ।।१७।।

भेद—

हे सखि ! मेरी हितभरी वाणी को पुनः सुन लो और मन को चञ्चल न करो। जब मुरारि अपराध मुक्त हैं, तो हे राधे ! तुम्हारा कोप उचित नहीं है।

नतिर्यथा :—

पदयुगले तव नाथो निपतति पाथोजलोचने विकलः ।
अथ सखि कथमनिदानं मुञ्चसि मानं नवा कठिने ।।१८।।

नति—

हे कमलनयनि ! ये तुम्हारे नाथ विकल होकर तुम्हारे चरणों पर गिर रहे हैं। तो हे सखि अकारण ही उत्पन्न मान का तुम त्याग क्यों नहीं करती ? अथवा तुम बहुत कठोर हो।

---

१. वचनं क।

उपेक्षा यथा—

खलवचनादनिशं यदि वामं
कलयसि हृदयं कलय निकामम् ।
कर्त्तुं पुनरनुनयनमिदानीम्,
आयास्यति नहि हरिरभिमानी ।।१६।।

उपेक्षा—

[हे सखि] दुष्टों के वचनों के कारण यदि दिन रात अपने हृदय को विपरीत अर्थात् प्रिय से विमुख रखती हो तो अवश्य रखो ! किन्तु अभिमानी हरि अब फिर अनुनय करने के लिए नहीं आएंगे ।

रसान्तरम् -

त्रासकौतुकहर्षाद्यैरीर्ष्यानाशो रसान्तरम् ।।

भय आश्चर्य अथवा हर्ष आदि के कारण ईर्ष्या का नाश रसान्तर कहा जाता है ।

यथा—

धन्या सा घनमाला त्रिजगति बालापि मानिनी सहसा[१] ।
यद्गर्जितेन चकिता स्वयमथ दयिताङ्कमाविशति ।।२०।।

यथा—

वह मेघमाला तीनों लोकों में धन्य है, जिसके गरजते ही वह मानिनी बाला सहसा चकित-सी स्वयं ही प्रिय के अंक में समा जाती है ।

प्रवासः पूर्वोक्त एव ।

प्रवास की चर्चा पहले श्लोक संख्या ९-११ में की जा चुकी है ।

रसमभंगभियात्रकरुणोपेक्षिता

विप्रलम्भ के सन्दर्भ में करुणा रस भङ्ग का कारण हो सकती है, अतएव यहां उसकी उपेक्षा की गयी है ।

---

१. महसा क

(काम दशाएं)

अभिलाषः स्मृतिश्चिन्ता प्रलापोगुणकीर्त्तनम् ।
उन्मादो जडता व्याधिरुद्वेगो मृत्यु[1]रेव च ॥११॥
विप्रलम्भे वरस्त्रीणामेताः कामदशाः दश ॥[2]
प्रत्येकं साम्प्रतं वक्ष्ये तदुदाहरणं स्फुटम् ॥१२॥

विप्रलम्भ की स्थिति में उत्तम नायिकाओं में निम्नलिखित दस काम दशाएं होती हैं :—अभिलाषा, स्मृति, चिन्ता, प्रलाप, गुणकीर्त्तन अर्थात् गुणों की चर्चा करना, उन्माद, जड़ता, व्याधि, उद्वेग एवं मृत्यु ।

अग्रिम पंक्तियों में इनके उदाहरण उपस्थित किये जा रहे हैं :—

अभिलाषो[3] यथा—

'कपे भूयात्' इत्यादि ॥२१॥

अभिलाष विषयक उदाहरण संख्या ६ में दृष्टव्य हैं ।

स्मृतिर्यथा—

नालापं तनुते न चापि कुरुते निश्वासकोष्णाः दिशः,
किञ्चिन्नेत्रपयो न मुञ्चति धरामध्ये सुमध्या क्षणम् ।
श्रीखण्डद्रवकेन सिंचति न वा वक्षोऽपि रक्षो गृहे,
स्मृत्वा रामकुतूहलानि हृदये सीता परं तिष्ठति ॥२२॥

स्मृति—

राक्षसराज रावण के घर में पड़ी हुई सीता राम के कुतूहलों का स्मरण करके न वार्त्तालाप करती है, न कुछ करती है, न उष्ण श्वास ही छोड़ती है, न उष्ण निश्वास ही छोड़ती है, न अपने आंसुओं से भूमि गीली कर रही है और न वह सुमध्यमा (सुन्दर कटि भाग वाली) [मनसिज ताप से तप्त शरीर के ताप की शान्ति के लिए शीतोपचाररूप] मलयागिरिचन्दन के द्रव का ही अपने वक्षस्थल पर लेप (सिञ्चन) कर रही है । अपितु शान्त बैठी हुई है । यहां सीता द्वारा श्रीराम का स्मरण ही प्रधानतया विवक्षित है, जिसके फलस्वरूप अन्य काम-अवस्थाएं अविद्यमान है ।

---

१. 'मृति' क
२. तुलनीय सा० द० ३.२०५–२०६
३. अभिलाषः स्पृहा । सा० द० ३.१९१

चिन्ता[1] यथा—

संचारं चाधिकमपि जनः कुर्वते पौरमार्गे
निद्रा न द्रागपि गृहपतेरागता नेत्रयुग्मे ।
धीरं धीरं कलयति घने ध्वानमुच्चैः समन्तात्,
कामे वामे कथमथ मयाऽलोकनीयो मुरारिः ॥२३॥

चिन्ता—

कोई कामातुर गोपी सोचती है—राजमार्ग पर अभी लोग गमनागमन अधिक मात्रा में कर रहे हैं। गृहपति के नेत्रों में अभी शीघ्रता से नींद भी नहीं आ रही है। बादल चारों ओर गम्भीर गर्जन कर रहे हैं। काम भी कुपित है। ऐसे समय मुरारी से भेंट कैसे हो? प्रस्तुत गद्य में गोपी द्वारा मिलन की चिन्ता ही प्रधानतया विवक्षित हैं।

प्रलापो[2] यथा—

सखीपुरः स्वापगताऽपि राधिका,
व्रजन्तमालोक्य भवन्तमन्यया ।
तनोति सद्यः सहसा समुत्थिता,
मनागुपालम्भनमेव तावकम् ॥२४॥

प्रलाप—

कोई सखी (दूती) राधिका की कामावस्था का वर्णन कृष्ण से करती है—'राधिका सखियों के बीच में सोते हुए भी [स्वप्न में] आपको किसी अन्य नायिका के साथ जाते हुए देखकर सहसा जागकर बैठ जाती है, और तत्काल आपको उलाहना देने लगती है। प्रस्तुत पद्य में राधाकृत प्रलाप की ही प्राधान्येन विवक्षा है।

---

१. चिन्ता प्राप्त्युपायादिचिन्तनम्। सा० द० ३.१६१

२. अलक्ष्यवाक्प्रलापस्स्याच्चेतसो भ्रमणाद् भृशम्। वही ३.१६२

गुणकीर्त्तनम् यथा—

पयोभिः संकीर्णे कुलिशभरदीर्णे व्रजपुरे,
निकामं हाऽऽलापैः घनरवकलापैश्च बलिते ।
धृतः शैलो येन द्रुतमथ नखेन प्रियवचाः,
स कुत्रास्ते नीलो वद सखि सुशीलो मुरहरः ।।२५।।

राधा किसी अन्य सखी से कहती है—जब व्रज में सब ओर पानी ही पानी भर रहा था, और व्रज नगर इन्द्र के द्वारा विदीर्ण किया जा रहा था, सभी ओर हाहाकार मचा था और मेघों [प्रलयकालीन मेघों की सदृश मेघों] का गर्जन सब ओर भर रहा था, उस समय जिस मधुर भाषी सुशील मुरारी ने तत्काल अपने नख से (अंगुलियों के अग्र भाग से) गोवर्द्धन पर्वत धारण कर लिया था [और इस प्रकार समस्त व्रज की अनायास रक्षा की थी] हे सखि बताओ वे श्याम कहां हैं ? प्रस्तुत पद्य में श्याम को पूछने के लिए प्रयुक्त वाक्य में उनके गुणों का ही प्रधानतया संकीर्त्तन गोपी (राधा) ने किया है, और वही प्रधानतया विवक्षित है ।

उन्माद—

उन्मादश्चेतसो भ्रमः[१] ।

यथा—

धावति निपतति राधा क्षणमपि बाधाभरं तनुते ।
विहसति मुञ्चति नीरं मुरहर धीरं मनः कुरुते ।।२६।।

उन्माद—

चित्त के भ्रम को उन्माद करते हैं । यथा—

श्याम की विरह में आतुर राधा कभी दौड़ती है, कभी गिर पड़ती है, और कभी अतिशय बाधाओं के होने का बोध कराती है । कभी उन्मुक्त हंसी हंसती है, कभी आंखों से अश्रु बहाती है, और कभी मुरारि में लीन मन को धीर बनाती है अर्थात् धैर्य पूर्वक मुरारि में ही मन को लीन कर देती है । प्रस्तुत पद्य में कृष्ण के विरह में व्यथित होने के परिणाम स्वरूप राधा के चित्त की अत्यन्त अस्थिरता का वर्णन होने से यहां उन्माद कामदशा मानी जाती है ।

---

१. उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि । वही ३.१६१

जडता[1] यथा—

सा वाणी हरिणीदृशो हि वदनं श्वासश्च नासायनम्,[2]
रागवंसुश्चाधरपल्ल[3] नयने सद्यो निमेषावली ।
स्पन्दानां निचयस्तनुं सुललितां गोपाल संश्रूयतां,
स्वान्तं केवलमेव नाम भवतः तस्याः जहौ न क्षणम् ।।२७।।

जड़ता—

राधा की कोई सखी श्याम से राधा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहती है—हे श्याम सुनो ! क्षण भर में ही उस मृगनयनी की मधुर वाणी ने उसके सुन्दर मुख को, श्वास ने नासा पुट को, लालिमा ने अधर पल्लव को, निमेष-उन्मेष ने नेत्रों को, स्पन्दन (गतिशीलता और कम्पन) ने उसके सुललित शरीर को छोड़ दिया। केवल उसके हृदय ने आपके नाम को नहीं छोड़ा । प्रस्तुत पद्य में वर्णित गतिहीनता अर्थात् गति का अभाव हो जाना ही जड़ता है, जो यहां प्रधानतया विवक्षित है ।

व्याधि[4]र्यथा—

रे रे सिञ्च न किञ्चिदम्बुजमुखीं श्रीखण्डपङ्कैरिमाम्,
दूरं पद्मदलन्निधेहि सजलं कर्पूरपूरान्वितम् ।
स्नेहालीं वितताऽतनुज्वरभृतां, तापस्य शान्तिः क्षणं,
न स्यादेव रसायनेन च विना शीतादिभिर्भेषजैः ।।२८।।

व्याधि—

अरे अरे इस कमलमुखी को चन्दन पङ्क से गीला न करो । कर्पूर समूह और जल से युक्त कमल के पत्ते दूर ही रखो, इस पर अपना स्नेह दो । अनङ्ग ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के ताप की शान्ति रसायन (रस की खान प्रियतम) की प्राप्ति के बिना इस शीतोपचार से क्षण भर के लिए भी नहीं होगी । प्रस्तुत पद्य में विरह प्रसूत ज्वर का वर्णन प्रधानतया किया गया है, अतः यहां व्याधि नामक कामदशा का वर्णन माना जाता है ।

---

१. जड़ता हीनचेष्टत्वमङ्गानां मनसस्तथा । सा० द० ३.१९३
२. नाशायनो । ख.
३. पल्लवश्च नयने इति क. ख.
४. व्याधिस्तु दीर्घनिश्वासपाण्डुताकृशतादयः । सा० द० ३.१९३

उद्वेगो यथा—

आहूता महती कुहूरथ मुहूराहुर्ग्रहे स्थापितः,
पारावारविशोषणाय कुपितः कुम्भोद्भवः प्रेरितः ।
इत्थं सृष्टिरकारि यस्य विधिना नाशाय पापाशयः,
सोऽयं व्योम्नि वियोगिनीजनरिपुश्चन्द्रः समुज्जृम्भते ।।२६।।

उद्वेग—

वियोगिनियों के लिए शत्रुभूत जिस चन्द्रमा के नाश के लिए ब्रह्मा ने अमावस्या की महारात्रि को बुलाया, बारम्बार ग्रस लेने के लिए राहु को स्थापित किया, [इसके जन्म स्थान को ही मिटा देने की कामना से] क्रोधित अगस्त को समुद्र (जो इसके उत्पत्ति स्थान हैं) को सुखा देने के लिए भी प्रेरित कर दिया है। इस प्रकार इतने उपायों की सृष्टि करने पर भी यह पापी चन्द्रमा आकाश में उठता ही जा रहा है। वियोगिनी के इस कथन से उसकी उद्वेग नामक काम-दशा की प्रतीति होती है।

मृति

रसभङ्गभिया मृतिरुपेक्षिता,

रसभङ्ग के भय से मृत्यु कामदशा की प्रायः उपेक्षा ही की जाती है।

इति शृङ्गार रस निरूपणम् ।

विभावश्चाथ[1] भावश्चानुभावस्तदनन्तम् ।
रसनिष्पादकत्वेन[2] क्रमेण च निरूप्यते ।।१३।।

रस विष्पत्ति के लिए हेतुभूत विभाव भाव (स्थायिभाव एवं व्यभिचारिभाव, जिन्हें संचारी भाव भी कहते हैं) एवं अनुभावों का क्रमशः अग्रिम पृष्ठों में निरूपण किया जाएगा।

विभावः

रसस्योत्पादको यश्च विभावः स समीरितः ।
उद्दीपनालम्बनाख्यः स पुनर्द्विविधः स्मृतः ।।१४।।

विभाव—

रस की उत्पत्ति का जो कारण है, उसे विभाव कहते हैं। वह उद्दीपन एवं आलम्बन भेद से दो प्रकार का है।

---

१. विभावाश्चाथ ख.   २. निष्पादकत्वे च, ख.

यथोक्त भरतेन—

'विशेषेण ये रसान्[१] भावयन्ति ते विभावाः',
भावयन्ति आविर्भावयन्ति इत्यर्थः ।
चन्द्रो भृङ्गः पिकालापो जीमूतो मलयानिलः ।
इत्यादयश्च श्रृंगाररसस्योद्दीपकाः स्मृताः ।।१४।।

आचार्य भरत ने भी कहा है :—'जो विशेष रूप से रसों की भावना कराते हैं वे विभाव कहाते हैं ।' यहां भरत के उपर्युक्त वचन में 'भावयन्ति' पद का आशय है 'ये आविर्भाव कराते हैं ।'

प्रस्तुत कारिका में 'रसस्योत्पादकः' अर्थात् 'रस की उत्पत्ति का हेतु' पद का तात्पर्य है, लोक में प्रेम आदि की उत्पत्ति का कारण । क्योंकि काव्य या नाटक में प्रथमतः रस की उत्पत्ति स्वीकार नहीं की जाती, और यदि कदाचित् स्वीकार कर ली जाए तो प्रस्तुत कथन के अनुसार विभाव को रस का उत्पादक मानना होगा और उस स्थिति में अनुभाव एवं भावों के निरूपण की अथवा स्वीकार करने की भी अपेक्षा न रहेगी ।

चन्द्रमा, भृङ्ग, कोकिल का कूजना, मेघ, मलयानिल अर्थात् दक्षिण पवन इत्यादि श्रृङ्गाररस के उद्दीपक माने जाते हैं ।

उद्दीपनं यथा—

समन्ताद् गुञ्जन्तो वनभुवि वसन्ते मधुकराः,
रमन्ते माकन्दे रसवति वसन्ते दयितया ।
पिकाली सानन्दं सखि कलममन्दं च कुरुते,
विधत्ते कारुण्यं मम जगति तारुण्यमधुना ।।३०।।

उद्दीपन विभाव—

इस समय वसन्त में भ्रमर सर्वत्र वन प्रदेश में गुञ्जार करते हुए सरस आम्रमञ्जरी में अपनी प्रियाओं के साथ रमण कर रहे हैं । हे सखि कोकिलाएं आनन्द पूर्वक उच्च स्वर से कूक रही है । ऐसी स्थिति मेरा यौवन ही आज संसार में कारुण्य का हेतु हो रहा है । प्रस्तुत पद्य में वसन्त ऋतु में समस्त जन्तुओं का सरस विहार वर्णन उद्दीपन विभाग के रूप में वर्णित है ।

---

१. 'रसाः' क

यथा वा

समन्ततोऽत्यन्त सुशीतलेऽनिले,
समागते चारु वसन्तवासरे।
कुहूकुहूच्चैरुदिते पिकी कले,
मुहुर्मुहुः सीदति काऽपि कामिनी ॥३१॥

एक अन्य उदाहरण :-

'चारों ओर जब अत्यन्त शीतल वायु प्रवाहित हो रहा है, सुखद वसन्त के दिन आ गये हैं। कोकिलाएं उच्च स्वर से 'कुहू' 'कुहू' शब्द कर रही है, ऐसे समय में कोई कामिनी [प्रिय से वियुक्त होने के कारण उसके विरह में] पीड़ित हो रही है। यहां वसन्त का मधुर विलास विरह अवस्था में उद्दीपन का हेतु हो रहा है। इस प्रकार यहाँ भी उद्दीपन विभाव का वर्णन माना जाता है।

यथा वा

मरुच्चलत्पल्लवपाणिनाऽधुना,
परिस्फुरन्तो द्रुमराजराजयः।
लताऽबलानां स्तवकस्तनानमी,
तुदन्ति चेतांसि मधौ वियोगिनाम् ॥३२॥

एक अन्य उदाहरण :—

इस समय मधुमास में वायु से चलित पल्लवरूपी हाथों से द्रुमराज (विशाल वृक्ष) रूपी नायकों का समूह लतारूपी नायिकाओं के स्तवकरूपी इन स्तनों को स्फुरित करते हुए वियोगी जनों के हृदयों को पीड़ित करते हैं।

यथा वा—

हसन्ती वासन्ती विकचकुसुममाली समुदयै—
रुदारैर्गायन्ती मुदितपिकभृङ्गावलिरवैः।
विशङ्कं क्रीडन्ती विततललिताङ्के विटपिनां,
मुनीनामप्यन्तः सहचरि वसन्ते व्यथति ॥३३॥

एक और उदाहरण :—

वसन्त में नव पुष्पित पुष्पों से मुस्कराती हुए वासन्ती लतारूपी नायिका विकसित पुष्प समूह से उठते हुए मुदित (प्रसन्न) कोकिल एवं भृङ्गों के समूह के उच्च कूजन और गुञ्जन के शब्दों के द्वारा मानों गायन करती हुई वृक्षों के विस्तृत सुखद अङ्क में शंकारहित होकर क्रीड़ा करती हुई, हे सखि मुनिजनों के अन्तः करण को भी व्यथित कर रही है।

अथ [उद्दीपन विभावे] वर्षा वर्णनम्—

पश्यन्तः शिखिनर्त्तनानि परितः केकाननेकान् अमी,
शृण्वन्तं किरतां जलञ्जलमुचामाकर्णयन्तो ध्वनीन् ।
भृङ्गालीरवकैतवेन वलितां किञ्चिद् ब्रुवन्तो लताम्,
उन्मादं सखि बर्द्धयन्ति तरवो वर्षासु हर्षाकुलाः ।।३४।।

अग्रिम पद्यों में [उद्दीपन विभाव के रूप में] वर्षा वर्णन प्रस्तुत है—

हे सखि ! वर्षा ऋतु में ये हर्षित वृक्ष अपने सब ओर मयूरों का नृत्य (नाचना) देखते हुए, अनेकशः उनकी केका सुनते हुए, जल की वर्षा करते हुए, बादलों का गर्जन सुनते हुए तथा भृङ्गसमूह की गुञ्जार के बहाने वलित (वक्र बनी हुई) लताओं (लतारूपी नायिकाओं) से कुछ कहते हुए—से उन्माद बढ़ा रहे हैं ।

यथा वा—

कूजति शिखिनिचयः श्रितगहनः
प्रसरति हा विरहानलदहनः ।
वहति कुटजपरिशीलितपवनः
तुदति मनो मम मनसिजशमनः ।।३५।।

एक अन्य उदाहरण—

हा गहन एकान्त वन में पहुँचकर जैसे-जैसे मयूर बोल रहे हैं, विरहानल वैसे ही वैसे फैलता जा रहा है, और जैसे-जैसे कुटज वन (चमेली के जंगलों या कुञ्जों) से होकर शीतल पवन बहता है, वैसे-वैसे कामाग्नि हमारे मन को व्यथित करती है ।

यथा वा—

विकचनीपवनपरिमलशीलः,
कुटजकुसुमपरिचरकृतलीलः ।
प्रवहति लघु लघु मरुदतिशीतः,
श्वसिति च विरहिजनः स्मरभीतः[1] ।।३६।।

एक अन्य उदाहरण :—

खिले हुए कदम्ब वन की सुगन्ध से युक्त चमेली कुसुमों के मध्य विचरण के समय लीला करता हुआ शीतल पवन मन्द-मन्द बह रहा है । किन्तु इन्हें काम समझ कर उनसे (बाणों से) भयभीत विरहीजन ऊर्ध्व श्वास ले रहा है ।

---

१. सर भीतः ख.

यथा वा—

दधानाः कोदण्डं सकलरणचण्डं सुरपतेः,
क्षिपन्तो धारालीमधिधरणि नालीकतुलिताम्[१] ।
निनादं कुर्वन्तो नभसि विलसन्तो जलधराः,
निहन्तुं सम्प्राप्ताः शिव शिव समन्ताद् विरहिणम् ।।३७।।

एक अन्य उदाहरण :—

हाय समस्त युद्धों में प्रचण्ड धनुष को धारण किये हुए, बाण वर्षा के सदृश (नालीक तुलित) पृथिवी पर जल धारा को फेंकते हुए और आकाश में गर्जन पूर्वक बिहार करते हुए बादल मानों चारों ओर से बिरहीजनों को मारने के लिए घिर आए हैं।

अथ शरन्निशावर्णनम्—

हिमकरधवलितविमलाकाशा, विकचकुसुमपरिकरललिताशा ।
वद सम्प्रति सखि किमिह विधेयं,शरदि न सुखदा यदि च निशेयम्।३८।

उद्दीपन विभाग के रूप में शरदकालीन रात्रि का वर्णन :—

ये रात्रियां चन्द्रमा के प्रकाश से शुभ्र निर्मल आकाश वाली एवं खिले हुए पुष्पों के समूह से मनोरम दिशाओं वाली हैं। यदि शरद काल में ये रात्रियां सुखदायक न हों अर्थात प्रिय विरह के कारण जब सुख नहीं दे रही हैं, तब हे सखि कुछ उपाय बताओ कि अब यहां क्या किया जाए।

यथा वा—

धात्रा[३] हर्ता[४] नभसि तमसां स्थापितोऽसीति मत्वा,
कान्तः स्वान्तस्थितमपि कथं तन्न भिन्नं करोषि ।
सोमं स्नेहादिति कुमुदिनी प्रष्टुकामाभिरामा,
स्वैरं स्मेरैरिव धवलितां सञ्चकार त्रियामाम् ।।३९।।

एक अन्य उदाहरण :—

हे कान्त (चन्द्रमा) तुम अन्धकार को हर लेते हो ऐसा मान कर ब्रह्मा ने तुम्हें आकाश में स्थापित किया है। किन्तु तुम अपने अन्दर ही स्थित उस अन्धकार [चन्द्रमा में स्थित कालिमा] को क्यों नहीं दूर कर देते, इस प्रकार स्नेह पूर्वक चन्द्रमा से पूछने की कामना वाली कुमुदिनी ने मानों निर्व्याज मुस्कुराहट से समस्त रात्रि को ही धवलित कर दिया।

---

२. तुलितम् ख. २. विपुलाकाशा ख. ३. धर्त्रा ख. ४. हर्त्रा ख.

विश्रब्ध नवोढा यथा—

सम्मीलितं नयनयुग्ममुरोजयुग्मम्
पाणिद्वयेन पिहितं कृत ऊरुबन्धः ।
नीवीगुणं बत दधाति कथं सुलज्जा
शय्याश्रितेति कुरुते बहुचित्तवृत्तिम् ॥४७॥

विश्रब्ध नवोढा—

प्रिय के साथ शय्या पर विद्यमान वह लज्जावश दोनों नेत्रों को बन्द करके दोनों हाथों से दोनों उरोजो को ढंक रही है, तथा जंघाओं को एक दूसरे में बांध रखा है। अब बेचारी वह शर्मीली नीवीबन्ध को कैसे संभाले इस प्रसंग में चित्त में बार बार सोच रही है।

(मध्या)—

समानलज्जा मदना मध्या च समुदीरिता ।
इयमेवातिविश्रब्धनवोढाऽतीव संश्रयात्[1] ॥२२॥

यह नवोढा ही प्रिय के अति संश्रय के कारण अतिविश्रब्ध होने पर लज्जा और मदन के समान सन्तुलन होने पर **मध्या** कहाती है।

यथा—

भर्त्तुर्निमीलितदृशो मुखमायताक्षी
संचुम्बितं कृतवती वदनं विनम्रम् ।
दृष्ट्वा तदीयमधुरस्मितमाससज्ज
लज्जाम्बुधौ नयनयुग्ममथापिधाय ॥४८॥

विशाल नेत्रों वाली निमीलित नयनों वाले प्रिय के झुके हुए मुख का चुम्बन करती है, किन्तु तभी उसके (प्रिय के) मुख पर मधुर मुस्कान देखकर अपने नेत्र बन्द कर लज्जा के सागर में मग्न हो जाती है।

---

१. मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना ।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता । सा.द. ३.५९ पृ० ७३

(नायिका भेदा:)—

स्वकीया परकीया च सामान्या च ततः परम् ।
नायिका त्रिविधा प्रोक्ता काव्यशास्त्रविशारदैः ॥१६॥

नायिका भेद

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने स्वकीया परकीया एवं सामान्या भेद से नायिका के तीन भेद बताते हैं।

(स्वकीया लक्षणम्)—

भर्त्तुः शुश्रूषणे सक्ता भर्त्तुरेवानुरागिणी ।
लज्जाशीलादिबलिता स्वकीया परिकीर्त्तिता ॥१७॥

स्वकीया का लक्षण—

पति की सेवा में संलग्न, पति के साथ ही प्रेम करने वाली, लज्जा एवं शील आदि गुणों से युक्त नायिका को स्वकीया (स्वीया) नायिका कहते हैं।

स्वकीया यथा—

केलीमन्दिरदेहलीबहिरियं दातुं न दक्षा पदम्,
चित्रं दिग्गजसंहतिं जितवती गत्या कुरङ्गेक्षणा ।
हास्येनास्य समीपगेन ललितेनेन्दोरमन्दश्रियम्,
प्राणेशश्रुतिगामिनैव वचसा संसारगं कोकिलम् ॥४२॥

यथा—

यह मृगनयनी यद्यपि केली मन्दिर से बाहर पैर रखने में भी समर्थ नहीं है, फिर भी आश्चर्य है कि अपनी गति से दिग्गज समूह को भी जीत रही है। इसके समीप में विद्यमान हास्य ने अर्थात् इसकी मन्द मुस्कान ने चन्द्र की अमन्द शोभा को भी जीत लिया है, इसी प्रकार केवल प्राणेश के कान तक ही पहुंचने वाले वचनों से संसार भर में विद्यमान (अर्थात् सुविदित) कोयल को भी जीत लिया है।

स्वीया तु त्रिविधा प्रोक्ता रसशास्त्रविपश्चिता ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भाख्या तासां भेदो विवक्ष्यते ॥१८॥

रस शास्त्र के पण्डितों ने स्वीया के भी मुग्धा मध्यमा और प्रगल्भा नामक तीन प्रकार बताये हैं। उनके भेदों का वर्णन अग्रिम पृष्ठों में किया जा रहा है।

मुग्धा तत्र च विज्ञेया नूतनोद्भूतयौवना[1]।
अज्ञातयौवना ज्ञातयौवना सा द्विधा पुनः ॥१६॥

उनमें से मुग्धा नायिका वह है, जिसमें अभी नवीन यौवन प्रगट हुआ है। मुग्धा के दो प्रकार है :—(१) अज्ञात यौवना (२) ज्ञात यौवना।

मुग्धा पुनः—

उदञ्चत्पद्मानां द्युतिनिचयमाधाय वदने
सुधायाः माधुर्यं वचसि वरमस्याः मृगदृशः।
गिरीणां काठिन्यं द्रुतमुरसि धर्त्तुं क्षितिपते !
स्मरस्योपेतस्य द्रुहिण उपहाराय यतते ॥४३॥

मुग्धा यथा—

हे राजन् ! वह मृगनयनी मुख पर खिलते हुए कमलों की कान्ति के निचय को लेकर, वाणी में अमृत के माधुर्य को धारण करके, वक्ष पर पर्वतों की कठोरता को अतिशीघ्र धारण करने के लिए, द्रोही अभ्यागत काम के उपहार हेतु यत्नशील है।

अज्ञातयौवना यथा—

लग्नाऽधुना मदुदरे विषमा भुजङ्गी
मातर्न कृन्तति पुनः किमितीह चित्रम्।
नैवाश्रयं दशति पुत्रि कदाचिदेषा
युनाम्मनांसि नियतं कवलीकरोति ॥४४॥

अज्ञात यौवना यथा—

हे मातः मेरे उदर पर अव विषम भुजङ्गी संसक्त हो गयी है (उदर पर यौवन सूचक केशराशि सर्पिणीसी प्रगट हो गयी है)। किन्तु मुझे डसती नहीं है, यह आश्चर्य है। [माता उत्तर देती है—] हे पुत्रि यह भुजङ्गी आश्रय को कभी नहीं डसती केवल युवजनों के मानस को ही खा जाती है।

---

१. प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा। सा. द. ३.५८

(प्रौढा)—

रतौदास्यं वितनुते याऽपराधं गते प्रिये ।

प्रौढाधीरातु सा ज्ञेया चाधीरा तर्जनादिकम्[1] ।।२६।।

प्रौढा—

प्रौढा के दो भेद है : धीरा और अधीरा। प्रौढा धीरा प्रिय के सापराध होने पर भी रति काल में दास्य भाव ही रखती है, तथा प्रौढा अधीरा तर्जन आदि करती है ।

प्रौढाधीरा यथा—

हास्यं नास्य सरोरुहे नयनयो नैंवाञ्जनं रञ्जनं

नैवोक्तिर्ललिता क्रियासु जडता लीलासु विद्वेषिता ।

इत्थं हन्त यदर्जितं बहुविधं कान्ते रुषो लाञ्छनं

तत्सर्वं तव निष्फलं हि कुरुते चञ्चत्कपोलद्युतिः ।।५३।।

प्रौढा धीरा—

न मुखकमल पर हास्य है, न आंखों में अंजन योजना और न ललितवाणी । क्रियाओं में जड़ता और लीला से विद्वेष अवश्य है । हे सखि इस प्रकार प्रिय पर क्रोध के चिह्न के रूप में तुमने जो बहुत कुछ अर्जित किया है, वह सभी कुछ तुम्हारे कपोलों की चमचमाती कान्ति के कारण निष्फल हुआ जा रहा है ।

प्रगल्माऽधीरा —

कन्या कुण्डलिनायकस्य भवतो मान्या तदन्या पुन-

र्गण्या कुत्र हृदास्ति सम्प्रति ततस्तत्रैव सङ्गच्छताम् ।

न्यस्तं यत्र[2] सुराधिराजकुसुमं प्रेम्णेति तीव्रं वचः

सत्याया विनिशम्य केशिमथनश्चित्रायितोऽभून्मनाक् ।।५४।।

प्रगल्भा अधीरा—

आपके मन में जब वह सर्पराज की ही कन्या बसी है, तब अन्य का हृदय से आदर कहाँ हो सकता है, इसलिए आप अब वहीं जाइए, जहाँ आपने प्रेम पूर्वक परिजात कुसुम (सुरराज कुसम) को आयोजित किया है । इस प्रकार सत्या (सत्यभामा) के तीव्र वचनों को सुनकर केशिनिषूदन कृष्ण कुछ काल तक आश्चर्य में पड़ गये ।

---

१. प्रगल्मा यदि धीरास्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा ।
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान्बहिः ।।सा.द. ३.६२-६३ ।

२. तत्र [illegible]

यथावा—

ध्वान्तध्वंसी निखिलजगतान्तीव्र तापापहारी
नायं सायं सुमुखि गगने शोभते शीतभानुः ।
हन्तुं हन्त प्रियविरहिणीं प्रस्थितस्येषुपाणेः
जाने छत्रं कनकरचितं साम्प्रतं सम्बरारेः ॥४०॥

हे सखि (सुन्दर मुखवाली) मैं तो समझती हूँ सायंकाल के समय आकाश में यह अन्धकार को दूर करने वाला और समस्त संसार के तीव्र ताप को हर लेने वाला चन्द्रमा शोभित नहीं हो रहा है, अपितु यह प्रियजनों के विरह से युक्त (नायिकाओं) को मार डाले ने के लिए हाथ में धनुष लिए हुए कामदेव का स्वर्ण निर्मित छत्र है।

यथावा—

क्षीराम्भोनिधिगर्भगस्य बडवावह्ने र्निधायोष्मताम्,
काकोलस्य दुराशयस्य च विधोः यातस्य पापात्मनः ।
किञ्चान्यच्च वियोगिनीजनमनःसन्तापकारस्य ते,
धत्तं केन विरुद्धबोधिवचसा नामेति शीतद्युतिः ॥४१॥

इत्युद्दीपन विभावाः

एक अन्य उदाहरण :—

हे चन्द्र क्षीरसागर के अन्दर में विद्यमान बड़वानल की उष्णता (ताप) को स्वयं में लेकर अन्तर में कालिमायुक्त अतएव दुष्ट स्वभाव वाले पापी, और इतना ही नहीं, वियोगिनियों के मन को सन्तप्त करने वाले तुम्हारा नाम किसने विरुद्ध बोधक शब्दों से शीतद्युति रख दिया है।

इस प्रकार उद्दीपन विभाव वर्णन समाप्त हुआ।

(आलम्बन विभावाः)—

आलम्बनविभावास्ते यानालम्ब्य रसोद्गमः ।
शृङ्गारालम्बनत्वेन नायिकादिर्निरूप्यते ॥१५॥

आलम्बन विभाव

जिनका आलम्बन करके रस का उद्गम होता है, उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। शृङ्गार आदि रसों में आलम्बन विभाव नायिका आदि होते हैं। इनका अर्थात् नायिका आदि का वर्णन आगे किया जा रहा है।

प्रगल्भा—

प्रगल्भा सुरतप्रीताऽऽनन्दात्सम्मोहसङ्गता ।
पतिमात्रैकविषयाऽशेषकेलीविशारदा[1] ॥२३॥

केवल पति का चिन्तन करने वाली अशेष केलिकुशला तथा सुरत में प्रीति करने वाली आनन्दवश सम्मोह को प्राप्त होने वाली नायिका प्रगल्भा कही जाती है।

यथा—

उषषि दयितनाभी पङ्कजं रन्तुकामा
विकसितमभिधातो[2]बोधमाशङ्कमाना ।
मुखशशि हसितोद्यच्चन्द्रिकाधोरिणीभिः
त्वरितमकृत पद्मामुद्रणं सारसानाम् ॥४६॥

प्रभात वेला (उषः काल) में प्रिय के विकसित नाभि कमल में रमण की कामना वाली सारसों के शब्द से प्रियके जागरण की आशंका करती हुई, मुखचन्द्र के हसितरूपी उदीयमान चन्द्रिका के आवरण से सारसों के मुखकमल को तत्काल बन्द कर देती है।

मध्या धीरा

श्लेषैः प्रकाशते[3] कोपं सागसि प्रेयसि द्रुतम् ।
मध्याधीरा च विज्ञेया त्वधीरा परुषा गिरा[4] ॥२४॥

मध्या धीरा—

जो सापराध (किसी अन्यनायिका के साथ किये गये रमणरूपी अपराध के कारण सापराध) प्रिय से अविलम्ब श्लेष के माध्यम से क्रोध को प्रकट करती हैं, उस नायिका को मध्याधीरा नायिका कहते हैं। जो कठोर वाणी से क्रोध प्रकट करे उसे मध्या अधीरा कहते हैं।

---

१. स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा ।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भक्रान्तनायका । सा.द. ३.६० ॥

२. अभिधातु क   ३. प्रकाश्यते क

४. प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या धीरा दहेद्रुषा ॥सा. द. ३.६१.
अधीरा परुषोक्तिभिः । सा.द. ३.६२ ।

धीरा यथा—

नाथ त्वदधरबिम्बे रुचिरतरे कज्जलं लग्नम् ।
बन्धूकोपरि निवसन्नलिरिव परिराजते सुचिरम् ॥५०॥

हे नाथ आपके अत्यन्त रुचिर अधरबिम्ब पर लगा हुआ कज्जल बन्धूक पुष्प (लालगुलदुपहरिया के फूल) पर बैठे हुए भ्रमर की भांति सुशोभित हो रहा है।

[प्रस्तुत कथन में 'तुमने किसी पराई स्त्री के नेत्रों का चुम्बन किया है, जो अत्यन्त अनुचित है, इस अर्थ का अभिधान प्रकारान्तर से हुआ है।]

मध्याऽधीरा यथा—

किमर्थमत्रात्रप पाणिनाऽमुना
स्पृशन्नुपैषि प्रियवाचमुद्गिरन् ।
व्रजन्ति किं द्रागपि सन्निधिस्थितिं
समुज्झितं पुष्पचयं मधुव्रताः ॥५१॥

हे निर्लज्ज तुम क्यों इन हाथों से छूते हुए, मीठी मीठी बातें बनाते हुए मेरे पास आ रहे हो। क्या मधु के प्रेमी भौंरे छोड़े हुए पुष्पसमूह के पास कभी भी जाते हैं?

मध्या धीराऽधीरा

धीराऽधीरा तु मध्याख्या वचसारुदितेन च ।
सन्निवेदयति क्रोधं प्रिये सद्यस्तथाविधे ॥२५॥

मध्या धीरा-अधीरा तो वाणी से और रुदन के द्वारा अपराध युक्त प्रिय से तत्काल अपने क्रोध को प्रगट करती है।

मध्या धीराऽधीरा यथा—

धन्योऽसि नाथ भुवने कृतिनाङ्गणेषु
गण्योऽसि शोणकमलायतलोचनोऽसि ।
इत्यानतीकृतमुखी परिभाषयन्ती
तुष्णीममुञ्चदवनौ नयनाम्बुबिन्दून् ॥५२॥

'हे नाथ तुम संसार में धन्य हो, कृतीजनों में गणनीय हो, तुम लाल एवं एवं विशाल नेत्रों वाले हो' इस प्रकार मुख नीचे करके बोलती हुई, चुपचाप भूमि पर आंखों से आंसू गिराने लगी।

---

१. धीराधीरा तु रुदितैः । सा.द.३.६२

ज्ञात यौवना :—

अयि सखि कथय निकामं परिहर वामं मनो भविता ।
स्तनयुगलावनिपालः कस्य च महतः करग्राही ॥४५॥

ज्ञात यौवना—

[कोई प्रेमी मुग्धा नायिका से कह रहा है—] हे सखि ! विपरीत मनोभाव को छोड़कर यथार्थ रूप से कहो, यह स्तनयुगलरूपी अवनिपाल किसका करग्राही होगा। अवनिपाल करग्राही अर्थात् कर ग्रहण करने वाला होता है, किन्तु यहां करग्राही शब्द 'कर से ग्रहणकिया जाने वाला' अर्थ में प्रयुक्त होकर रूपक अलंकार का मूल हो रहा है।

नवोढा—

मुग्धाक्रमेण भीलज्जापराधीनरतिश्रया।
नव्यभूषाश्रितस्नेहा नवोढा समुदाहृता[1] ॥२०॥

नवोढा—

जब मुग्धा नायिका की लज्जा क्रमशः कम होने लगती है, तथा वह अन्य के आधीन रति वाली, नवीन वेषभूषायुक्त एवं आश्रित पर स्नेह वाली होती है, तब उसे **नवोढा** कहते हैं।

नवोढा यथा—

प्रियं विदूरादपि वीक्ष्य न क्षणं
क्षणप्रभेव स्थिरतामपेक्षते ।
अपि प्रयत्नात्कथमस्तु सा मनाग्
इयं विना केलिनिकेतनाऽतिथिम्[2] ॥४६॥

नवोढा यथा—

प्रिय को दूर से भी देखकर बिजली की भांति क्षण भर भी स्थिर नहीं रहती है। यदि कथमपि प्रयत्नपूर्वक स्थिर होती भी है, तो केलिभवन के अतिथि (प्रिय) के बिना नहीं।

सैव क्रमशो विश्रब्ध नवोढा प्रश्रयादिह ।
उदाहरणमस्यास्तु साम्प्रतम्प्रोच्यते स्फुटम् ॥२१॥

नवोढा ही क्रमशः प्रिय के प्रश्रयवश विश्रब्धा (विश्रब्ध नवोढा) हो जाती है। इसका स्पष्ट उदाहरण अग्रिम पंक्तियों में प्रस्तुत है।

---

१. सा प्रकीर्तिता इति क,   २. अतिथिः क

कुलटा यथा

नियतं तिमिरमयो नहि समयः सखि चाभवद[1]गणितपुन्निचयः ।
मुदमवनीवनवारितशय्या भजतु कथं कुलटागत लज्जा ॥६५॥

कुलटा यथा—

हे सखि निश्चित ही अन्धकारमय समय नहीं है, और तमाम लोग विद्यमान हैं, यह ठीक है (प्रसन्नता की वात है) कि वनभूमि में शय्या आवृत है, फिर भी कुलटा निर्लज्ज होकर कैसे वहां पहुँचे ।

कन्यका यथा—

गुरुजनमध्येबाला गुम्फति मालामियं निभृतम् ।
मुहुरपि पश्यति दयितं चञ्चलनयनाञ्चलैः कृतिनम् ॥६६॥

गुरुजनों के बीच बैठी हुई यह बाला चुपचाप माला गूंथ रही है, और बार बार चंचल नयनों से कृती प्रिय को भी देख रही है ।

स्वकीया[2]

अन्यसम्भोगसंखिन्ना स्नेहसौन्दर्यगर्विता ।
मानिनीति च विज्ञेया परकीयान्तरस्थिता ॥३१॥

परकीया से भिन्न अर्थात् स्वकीया के चार प्रकार हैं—
अन्यसम्भोगसंखिन्ना, स्नेहगर्विता, सौन्दर्यगर्विता एवं मानिनी ।

अन्य सम्भोग संखिन्ना यथा[3]—

वक्षोजे नखरक्षतानि बहलं दन्तक्षतं चाधरे
सन्ध्यायां[4] कथमागतासि कुटिले तस्याधमस्यालयात् ।
किन्तावत्तव दूषणं कुदिवसात्सर्वं ममैवाधुना
मार्जारीव यतः पयोऽवनविधौ त्वन्तत्र सम्प्रेषिता ॥६७॥

नायिका अपनी दूती में नायककृत संभोग चिह्नों को देखकर उससे (दूती से) कहती है—स्तनों पर अनेकशः नखक्षत एवं अधर पर अनेक दन्तक्षत लिए हुए हे कुटिले तू उस अधम के निवास से सन्ध्या काल में ही कैसे आ गयी है? किन्तु इसमें तुम्हारा क्या दोष है, मेरे ही बुरे दिनों के कारण तुम वैसे ही वहाँ भेज दी गयी, जैसे दूध की रखवाली के लिए बिल्ली को नियुक्त कर दिया गया हो ।

---

१. नाभवंद् क   २. क पुस्तके नास्ति
३. क पुस्तके नास्ति   ४. सन्ध्यायान्तिकम् क

परकीया-नायिका

'गुप्तं प्रेम सदा यस्य वर्त्तते परनायके ।
परकीया समाख्याता सैव काव्यविशारदैः'[1] ॥२८॥'

जिस नायिका का अन्य नायक से गुप्त प्रेम है, काव्यशास्त्र के विद्वान् उसे परकीया नायिका कहते हैं ।

परकीया यथा—

प्रचलति पथि पिशुनाली नहि पुनराली जनः सविधे ।
दयिते निवसति दूरे तुदतु क्रूरेषुभि र्मदनः ॥५७॥

यथा—

चुगलखोर सखियाँ जब मार्ग में चल रही हों, और प्रिय सखियाँ पास न हो तथा प्रिय बहुत दूर हों तो काम क्रूर बाणों से पीड़ित करेगा ही ।

परकीया भेद

रतिसङ्गोपना रुष्टा विदग्धा द्विविधा मता ।
लक्षिताऽनुशयाना च मुदिता कुलटा पुनः[2] ॥२९॥
एतासां परकीयायामन्तर्भावः समीरितः ।
प्रोच्यते स विशेषेण तदुदाहरणानि च ॥३०॥

परकीया—भेद—

रतिसङ्गोपना, रुष्टा, दो प्रकार की विदग्धा (वाग्विदग्धा क्रियाविदग्धा) लक्षिता, अनुशयाना (पश्चात्तापवती), मुदिता, कुलटा इत्यादि का परकीया में ही अन्तर्भाव किया जाता है। अग्रिम पंक्तियों में उनके उदाहरणों का विशेषतः कथन किया जा रहा है ।

रतिसङ्गोपना यथा—

बन्धूकभ्रमतो ममाधरदलं संखण्डितं षट्पदैः
कीरेणालि सुहृद्यदाडिमफलभ्रान्त्या स्तनौ विक्षतौ ।
भोगीति त्वरितं मयूरनिकरैर्वेणी समाकर्षिता
द्रष्टुन्नैव पुनः कदाप्युपवनं यास्यामि चैकाकिनी ॥५८॥

रति सङ्गोपना—

हे सखि मैं बन्धूक पुष्पों की क्यारी के पास भ्रमण कर रही थी कि (बन्धूक पुष्प के भ्रम से) भौंरो ने मेरे अधर में काट लिया, मधुर अनार फल के भ्रम से शुक ने

---

१. परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा । सा.द. ३.६६

२. यात्रादिनिरताऽन्योढा कुलटा गलितत्रपा । सा.द. ३.६६.

मेरे स्तनों को विक्षत कर डाला तथा सर्प समझ कर मयूरों ने मेरी वेणी को खींच डाला, अतः मैं अब उपवन को देखने अकेले कभी न जाऊंगी।

प्रस्तुत पद्य में भ्रमरदंश, शुककृत उरोज विक्षति, और मयूरों द्वारा वेणी खींचने का कथन करती हुई, नायिका परनायककृत रतिचिह्नों का संगोपन कर रही है। अत, वह रतिसंगोपना कही जाती है।

रुषिता यथा--

न वसामीह ननन्दा कथयति मन्दाक्षरं रुषिता।
संयातीति लपन्ती जननीगृहमीक्षितुं दयितम् ॥५६॥

रुषिता ननन्दा 'मैं यहां नहीं रहूगी' ऐसा कहती है, और पति से 'मैं मां के घर देखने (जा रही हूँ)' ऐसा मन्दस्वर में कहती हुई, जा रही है।

वाग्विदग्धा यथा—

गृहे दासी नासीदतिचपलचेताः परिजनो
ननन्दा मन्दाङ्गी पतिरपि न देशे निवसति।
इयं स्वश्रूरश्रु त्यजति निशि वृद्धा प्रतिपलं
मदावासे वासस्तव पथिक नैवोचितमिति ॥६०॥

वाग्विदग्धा—यथा—

आज घर में दासी नहीं है, सेवक जन भी अत्यन्त चंचलचित्त हैं (अर्थात् उनका ध्यान भी हमारी ओर न जाएगा) ननन्द आज सुस्त है, पति यहां नहीं हैं, और हमारी वृद्धा सासजी रातभर अविकल आंसू बहाती रहती हैं', अतः है 'पथिक मेरे निवास में तुम्हारा रहना उचित नहीं है। यहां रात्रि निवास के निषेध के माध्यम से आमन्त्रण का व्यञ्जना द्वारा कथन करने से इस परकीया को वाग्विदग्धा कहा गया है।

क्रिया विदग्धा यथा—

समुपेते निजदयिते गुरुसविधस्थायिनी सुमुखी।
विलिखति नखेन भूमौ मुहुरपि विधुमण्डलं विदुषी ॥६१॥

क्रियाविदग्धा यथा—

गुरुजनों के समीप में बैठी हुई विदग्धा नायिका निज प्रिय के उपस्थित होने पर नख से बारम्बार चन्द्रमण्डल बनाती है।

यहाँ चन्द्र मण्डल के विलेखन की क्रिया द्वारा 'रात्रि में चन्द्रोदय के समय मिलना उचित होगा' इस अर्थ का बोध कराती है, अतः यह क्रियाविदग्धा नायिका मानी जाती है।

यथा—

दीर्घश्वासहुताशनेन दहति स्वाङ्गानि पद्मानना
वक्षोनिर्गतशंकरौ च नियतं नेत्राम्बुना सिञ्चति ।
हित्वा सा खलु मञ्जुलानि चिरतस्तल्पानि शेतेऽवनौ-
इत्थं त्वन्मिलनेच्छया यदुपते तीव्रं तनोति व्रतम् ॥७२॥

वह कमल की भांति सुन्दर मुखवाली दीर्घ निश्वासरूपी अग्नि से अपने अङ्गों को जला रही है, उरोजों को आंसुओं से भिगो रही है, सुन्दर कोमल शय्या को बहुत समय से छोड़कर भूमि पर ही सो रही है। इस प्रकार वह तुमसे मिलने की कामना से कठिन व्रत का अनुष्ठान कर रही है।

यथा वा—

इन्दुं निन्दति कैतवेन वचसा श्रीखण्डखण्डद्रवं
दूरादेव निरीक्षते नहि तनौ धत्ते गुरूणाम्भिया ।
तल्पं पल्लवनिर्मितं प्रणमति स्वापस्य नापि क्षणम्
व्यापारं वितनोति तत्र सुमुखी राधापते त्वत्कृते ॥७३॥

अथवा—

हे राधापति ? तुम्हारे लिए वह सुमुखी, (विरह व्यथित होकर) चन्द्रमा को व्याज वचनों से कोसती है, विविध प्रकार के चन्दन द्रवों को दूर से ही देखती है, गुरुजनों के भय से भी शरीर पर नहीं रखती। पल्लव निर्मित शय्या को दूर से ही प्रणाम करती है और एक क्षण के लिए भी नहीं सोती है।

बिप्रलब्ध—

प्रेयसा वञ्चितं दृष्ट्वा संकेतं पूर्वकल्यितम् ।
या विषीदति सा चेह विप्रलब्धा प्रकीर्तिता[२] ॥३६॥

पूर्व निर्धारित संकेत स्थल को प्रिय से रहित देखकर जो नायिका विषाद कर रही है, उसे विप्रलब्धा कहते हैं।

---

२. प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति सन्निधिम् ।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता ॥सा.द. ३.८३

धीराऽधीरा प्रगल्माख्या तद्द्वयेन विमिश्रिता[1]—

प्रगल्मा धीरा-अधीरा :—

प्रगल्मा धीरा-अधीरा में दोनों अर्थात् धीरा और अधीरा के गुण मिले हुए ही होते हैं।

प्रगल्भाधीराऽधीरा यथा—

आयाते मधु सूदने मृगदृशो वक्षोजयुग्माङ्किते
सद्यः श्रस्त शिरोवगुण्ठनपटं तस्थौ विधायाऽऽनतिम्।
साशंकं निभृतेन किञ्च गदितुं व्यापारमातन्वति[2]
क्रोधाशक्त कपोतनेत्रसदृशौ राधा[3] दृशौ सन्दधौ ॥५५॥

किसी स्त्री के वक्षोज युगल के चिन्हों से युक्त मधुसूदन के आने पर राधा तत्काल शिर पर अवगुण्ठन कर (पर्दा डाल कर) प्रणाम करके खड़ी हो गयी। इससे कुछ शंकित होकर शान्त हो कुछ कहने के लिए प्रयास करने पर राधा क्रोधित हो कबूतर के नेत्रों के सदृश रक्त (लाल) नेत्रयुक्त हो गयी।

भर्त्तुरेवाधिकस्नेहा ज्येष्ठा कविभिरीरिता ॥२७॥
कनिष्ठा च लघुस्नेहा सम्प्रोक्ता काव्यनाट्ययोः।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

काव्य और नाटकों में उसे ज्येष्ठा नायिका कहा जाता है, जिस पर नायक का अतिशय प्रेम हो तथा जिसके प्रति प्रेम कम हो उसे कनिष्ठा नायिका कहते है।

ज्येष्ठा कनिष्ठा यथा—

एकत्र स्थितयोः सरोरुहदृशोर्भूयो विरुद्धाक्षरं
जल्पन्त्योश्चतुरः समेत्य सविधं स्थित्वा स किञ्चित्क्षणम्।
एकस्या नयने पिधाय निभृतं पाणिद्वयेनादरात्
स्वच्छन्दं परिचुम्बति स्म वदनं कान्तः परस्यास्तदा ॥५६॥

यथा—

चतुरनायक एक स्थान पर बैठी हुई एवं परस्पर अत्यन्त विरुद्ध बोलती हुई अर्थात् विवाद करती हुई कमल की भांति सुन्दर नेत्रों वाली दो स्त्रियों के पास जाकर कुछ क्षण रुक कर चुप-चाप दोनों हाथों से एक की आंखें आदर पूर्वक बन्द कर लेता है, और तब स्वच्छन्दता पूर्वक दूसरी के मुख का चुम्बन करता है।

---

१. धीराधीरा तु सोल्लुण्ठभाषितैः खेदयत्यमुम्। सा. द. ३.६३.

२. आतन्वती क ३. सत्या क

स्नेह गर्बिता यथा—

मा कृथाः सखि वृथा परिश्रमं शारदेन्दुमुखि हारगुम्फने ।
वीक्ष्य लग्नमपि चन्दनद्रवन्दूयते हि विरहीव केशवः ॥६८॥

स्नेह-गर्विता

कोई नायिका हार गुम्फन में व्यापृत सखी को कह रही है—शारद-पूर्ण-चन्द्र की भांति सुन्दर मुखवाली हे सखि, हार गुम्फन में श्रम व्यर्थ न करो। केशव तो मेरे शरीर पर चन्दनद्रव को लगा हुआ देख कर (उसे भार मानते हुए) विरही के के समान दुःखी होते हैं।

सौन्दर्य गर्विता—

सखि यास्यामि सरस्यां तत्र न कस्यापि भाषितैः बहुभिः ।
मुखमभिवीक्ष्य सशोका विलपति कोकावली परितः ॥६९॥

सौन्दर्य गर्विता—

हे सखि, मैं सरसी-तट पर जाऊँगी, वहां किसी को बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मेरा मुख देखने के बाद से वहां सब ओर व्यथित चक्रवाक समूह विलाप कर रहा है। अर्थात् मेरे देखने के बाद से ही मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध नायक चक्रवाक की भांति मेरे विरह में पीड़ित है।

मानिनी यथा—

कृशाकारास्ताराः प्रविलपति पारावतकुलं
गृहोपान्ते कान्ते दधति कलविङ्काः कलकलम् ।
समीक्ष्य त्वामम्भोरुहमुखि सुरम्भोरुविकलाम्
त्रियामापि क्षामा शिव शिव रुषं मुञ्च कठिने ॥७०॥

मानिनी—

हे कमल की भांति सुन्दर मुख वाली एवं कदली स्तम्भ की भांति सुन्दर जंघाओं वाली, तुम्हें विकल देखकर तारागण मलिन हो रहे हैं, कपोतकुल विलाप कर रहे है, घर के निकट कान्त को आया देखकर गौरैया भी कलरव कर रही हैं, रात्रि भी मलिन और क्षीण हुई जा रही है, अतः हे कठिन हृदयवाली तुम अब मान छोड़ दो।

सामान्या—

सामान्या सर्वजनगा वसुलुब्धा गतत्रपा ॥३२॥

सामान्या उस नायिका को कहते है, जो सभी जनों के साथ रमण करती हैं, ये धन की लोभी एवं लज्जा रहित हुआ करती हैं।

यथा—

श्रीमन्तं समुपागतं गृहतटे[1] दृष्ट्वा विहस्यादरात्[2]
उत्थायाशु शुभासनं वितनुते स्वैरं विधाय स्मितम् ।
लब्ध्वा किञ्च धनं मनागपि तदा संव्यक्तवक्षोरुहा
सानन्दं दयितेन केलिनिलये वाराङ्गना क्रीडति ॥७१॥

यथा—

घर के निकट धनिक को आया हुआ देखकर हंसती हुई आदर पूर्वक उठकर तुरन्त निर्बाध मुस्करा कर शुभ आसन प्रदान करती है, तथा कुछ थोड़ा भी धन प्राप्त करके अपने बक्षोज को प्रगट करती हुई केलिगृह में ले जाकर वाराङ्गना प्रिय के साथ सदानन्द क्रीड़ा (कामक्रीडा) करने लगती है ।

दशा भेदेन नायिका भेदाः

एताः दशा विभेदेन चाष्टधा परिकीर्त्तिताः ।
प्रोषितभर्तृका चाद्या विप्रलब्धाऽथ खण्डिता ॥३३॥
उत्का वासकसज्जा च कलहान्तरिता तथा ।
स्वाधीनपतिका चैव तथा चैवाभिसारिका ॥३४॥

दशा भेद से नायिका-भेद—

ये उपयुक्त नायिकाएं ही दशा भेद से आठ प्रकार की कही जाती है :—(१) प्रोषितपतिका (२) विप्रलब्धा, (३) खण्डिता, (४) उत्का (उत्कण्ठिता) (५) वासक सज्जा, (६) कलहान्तरिता, (७) स्वाधीनपतिका एवं (८) अभिसारिका ।

प्रोषितभर्तृका—

पतिर्देशान्तरस्थायी यस्यास्तु हरिणीदृशः ।
प्रोषितभर्तृका सेह प्रोच्यते काव्यकोविदैः[1] ॥३५॥

प्रोषित भर्तृका—

जिस मृगनयनीका पतिदेशान्तर को गया हुआ है, काव्यशास्त्र के आचार्य उसे प्रोषितभर्तृका (प्रोषितपतिका) नायिका कहते हैं ।

---

१. प्रियस्य क. ख

२. नानाकार्यवशाद्यस्याः दूरदेशं गतः पतिः ।
सा मनोभवदुःखार्त्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका । सा.द. ३.८४.

लक्षिता यथा—

वक्षोरुहे सुमुखि ते नखरस्य रेखा
केषामियं नहि करोति मनोविनोदम् ।
केलिच्युता चिकुरसीम्नि विशालमाला
बाले सितासितधियं हृदये तनोति ॥६२॥

लक्षिता यथा—

हे सुन्दरि तुम्हारे वक्षोजों (स्तनों) पर ये नखचिह्न किसका मन नहीं बहलाते, और केशपाश के छोर पर केलि में खिसक कर आई हुई विशालमाला हृदय में श्वेत-श्याम (गंगा यमुना) का भ्रम उत्पन्न करती है।

अनुशयाना यथा—

करे समाधाय रसालपल्लवं
विशालपुष्पावलि मण्डितोरसम् ।
निरीक्ष्य गोपालमुपागतं सखी
समक्षमम्भोजमुखी विषीदति ॥६३॥

अनुशयाना यथा—

हाथ में आम के पल्लव लिए विशाल पुष्पमाला से मंडित उरःस्थल वाले गोपाल को आया हुआ देखकर कमलवदना नायिका सखी के समक्ष पश्चात्ताप करती है।

यहां रसालपल्लव आदि देखकर गोपाल को दिये हुए संकेत स्थल पर यथा समय न पहुंच सकी, अतः लौटे हुए गोपाल को देखकर वह पश्चाताप करती है।

मुदिता यथा—

गृहपतिमतिदूरं गन्तुकामं निरीक्ष्य
प्रियतममनुसङ्गं[1] निर्भयं चिन्तयन्ती ।
मुहुरपि गुरुमध्ये शोकजास्रच्छलेन
त्यजति सरसिजाक्षी मोदजातोदबिन्दून् ॥६४॥

मुदिता यथा—

गृहपति बहुत दूर जाना चाहते हैं, यह देखकर 'प्रियतम के साथ निर्भय बिहार होगा' ऐसा सोचते हुए गुरुजनों के बीच बैठी हुई कमलनयनी शोकजन्य आंसुओं के बहाने आनन्दजन्य आंसू बहा रही है।

---

१. तनुसङ्गम् क

यथा—

अये भ्रातर्भृङ्ग प्रति विटपिशृङ्गं निवसता
तिरोभूतोऽरण्ये ललितमृगवन्येन भवता ।
स कृष्णः सन्दृष्टः क्वचिदपि च हृष्टो विहरता
विना येनाहं तावदिह धृतसन्तापनिचया ॥७४॥

यथा—

हे भाई भृङ्गः, प्रत्येक वृक्ष की चोटियों पर निवास करते हुए एवं सुन्दर वन मृगों के साथ विहार करते हुए तुमने क्या कहीं वन में प्रसन्नमुख छिपे हुए उस कृष्ण को देखा है, जिसके बिना मैं बहुत अधिक सन्तप्त हो रही हूं ।

यथा वा—

स्पृष्ट्वा पन्नगमंघ्रिणा तृणमिवोल्लंध्य त्रपानिम्नगाम्
भंक्त्वा धैर्यकुलाभिमानरुचिरक्षोणीरुहाणां व्रजम् ।
दृष्टं सम्प्रति यत्कृते सखि मया दुर्गं च वृन्दावनं
तेनाहं बत वञ्चिता स्मरवशा यास्यामि कस्याश्रयम् ॥७५॥

अथवा—

हे सखि, पैरों से सांप को छूकर अर्थात् पैरों में सर्पदंश सदृश कष्टों को सहकर, तृण की भांति लज्जारूपी नदी को लांघकर, धैर्य एवं कुल के अभिमानरूपी वृक्षों के समूह को भी रौंदकर मैं जिसके लिए इस दुर्गम वृन्दावन में आई थी, उसने मुझे धोखा दे दिया है, हाय, अब मैं कामवशा किसके आश्रय में जाऊंगी ।

(खण्डिता)—

समागतं प्रियं वीक्ष्य परस्या रतिचिह्नितम् ।
सन्तप्ता या भवेदत्र खण्डिता सा प्रकीर्त्तिता[1] ॥३७॥

किसी पराई के साथ की गयी रति के चिह्नों से अंकित प्रिय को आया हुआ देखकर जो नायिका सन्तप्त हो रही हो, उसे **खण्डिता** कहते हैं ।

---

१. पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसम्भोगचिह्नितः ।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ॥ सा.द.३.७५

यथा—

नेत्रस्याधरपल्लवे सुललितं पश्यामि ते भूषणं
रागस्तस्य महानथाक्षिकमले संशोभते साम्प्रतम् ।
सख्यं कुत्र हरे ! विलग्नमनयोरेणीदृशो जल्पितं
श्रुत्वेदं मधुसूदनेन वदनं नम्रीकृतं व्रीडया ।।७६।।

हे हरि, आपके अधरों पर आंखों का सुन्दर आभूषण देख रही हूं अर्थात् आंखों का आभूषण अधरोष्ठ में लग रहा है, और अधरोष्ठ की विशाल लालिमा आपके नेत्र कमलों पर शोभायमान हो रही है, इनके साथ यह विपरीत मित्रता कहां हो गयी ? मृगनयनी (गोपी) के इन वचनों को सुनकर मधुसूदन ने लज्जा से मुख नीचा कर लिया ।

यथा वा—

सम्प्राप्तस्य च वल्लभस्य नयनं शोणारविन्दायितं
वक्षो वीक्ष्य विपक्षपङ्कजदृशो वक्षोरुहेणाञ्चितम् ।
नास्रं किञ्चिदमुञ्चदिन्दुवदना सद्यो गुरूणाम्भिया
स्वैरं स्वैरमियं चकार विपुलश्वासैः कदुष्णाः दिशः।।७७।।

अथवा—

आये हुए प्रिय के नेत्रों को लाल कमल बने हुए तथा वक्षस्थल को सपत्नी कमलनयनी के उरोजों के चिह्न से अंकित देखकर गुरुजनों के भय से यद्यपि इन्दु की भांति सुन्दर मुख वाली ने तुरन्त एक भी आंसू नहीं गिराये, किन्तु एकान्त में दीर्घ निःश्वासों से दिशाओं को तप्त कर डाला ।

उत्का—

सुसङ्केतस्थले भर्तुरनागमनकारणम् ।
या तु चिन्तयति क्षुब्धा सोत्का कविभिरीरिता[1] ।।३८।।

जो नायिका संकेत स्थल पर प्रिय के न पहुंचने के कारण को क्षुब्ध होकर सोच रही है, उसे कविजन **उत्का** या **उत्कण्ठिता** नायिका कहते हैं ।

---

१. आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति चेत्प्रियः ।
तदनागमदुःखार्त्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा । सा.द.३.८६.

यथा—

गता न हरिसन्निधिं किमु विधे सखी मन्थरा
स एव रुषितोऽधुना बत किमस्ति यन्नागतः ।
इति प्रचललोचना रहसि चिन्तयन्ती भृशं
सरो विगलदश्रुणः कृतवती सरोजानना ॥७८॥

हे भगवान् । क्या मन्थरा सखी कृष्णजी के पास नहीं गयी ? अथवा वही इस समय मुझ पर रुष्ट हैं, ! जो यहां वे नहीं आये । इस प्रकार चञ्चल नेत्रों वाली इन्दु की भांति सुन्दर मुखी वाली गोपी ने एकान्त (संकेत स्थल) में सोचते हुए गिरते हुए आंसुओं से तालाब बना डाला ।

यथा वा—

भीतः किम्पथि दुर्जनात्किमु सखी स्वापं गतो हेलया
किं केनापि निवारितो मम गृहे यन्नागतो माधवः ।
इत्यालोच्य विमुच्य लोचनपयो भूयः सरोजानना
केलीमन्दिर देहली बहिरियं संवीक्षते केवलम् ॥७९॥

हे सखि, क्या वे मार्ग में दुष्टों से डर गये हैं, अथवा उन्हें स्वाभाविक निद्रा आ गयी ? अथवा किसी ने उन्हे मना कर दिया है, जिससे माधव आज नहीं आए, ऐसा सोचकर कमल की भांति सुन्दर मुख वाली नायिका आंसू बहाती हुई केलिगृह की देहली के बाहर ही देख रही है ।

वासक सज्जा—

अद्य मे प्रेयसो वार इति निश्चित्य चेतसा ।
सज्जीकरोति भूषादीन् सैव वासकसज्जिका[३] ॥३९॥

जो नायिका 'आज मेरे प्रिय के मेरे पास आने की बारी है' ऐसा मन में निश्चय करके भूषा आदि (वस्त्र आभूषण आदि) सजाती है, उसे ही **वासक सज्जा** नायिका कहते है ।

---

३. कुरुते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि ।
सा तु वासकसज्जा स्याद् विदितप्रियसङ्गमा । सा.द. ३.८५.

यथा—

कर्णौ स्वर्णमवापतुर्मृगदृशो नीलाञ्जनं लोचने
वक्षोजौ नवकञ्चुकञ्च रुचिरं बाहूरणत्कङ्कणम् ।
इत्थं वल्लभवासरे द्रुतमिते लब्धं निजाभीप्सितं
सर्वेणैव पुरस्कृतेन कुटिलाः केशा ययुर्वर्द्धनम् ॥८०॥

मृगनयनी ने कानों में स्वर्णाभरण पहन लिया आंखों में श्याम अञ्जन लगालिया, उरोजों पर नवीन कञ्चुक और हाथों में रुनझुन करते कंगन धारण कर लिये। इस प्रकार प्रिय के आगमन का वार आने पर शीघ्र ही सभी अंगों ने निज अभीष्ट प्राप्त कर लिये और कुटिल केशों ने वृद्धि प्राप्त कर ली।

यथा वा—

स्वश्रू तल्पतले मनागपि सखि स्थास्यामि नोष्माकुला
संजल्प्येति चकार चारु शयनं दूरे कुरङ्गेक्षणा ।
उद्भूता मम साम्प्रतं च वपुषि स्वेदाम्बुनो बिन्दवो
व्याजेनेति बहिर्गृहस्य दयितं द्रष्टुं जगामानिशम् ॥८१॥

हे सखि गर्मी से व्याकुल होने के कारण सास जी की शैय्या के निकट मैं नहीं रहूंगी अर्थात् नहीं सोऊंगी, ऐसा कहकर मृगनयनी ने वहां से दूर सुन्दर सा विस्तर लगाया। ओह गर्मी से अब मेरे शरीर में पसीना निकलने लगा, इस बहाने से वह प्रिय को देखने के लिए घर से बाहर निकल आई।

कलहान्तरिता—

अवमत्य प्रियं पश्चात्परितप्ता विषीदति ।
कलहान्तरिता सेह कविभिस्समुदीरिता[1] ॥४०॥

जो नायिका प्रिय का अवमान करके बाद में विरहसन्तप्ता हो दुःखी होती है, उसे कविजन कलहान्तरिता कहते हैं।

---

१. चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या ।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा ॥सा.द. ३.८२

यथा—

गते कान्ते कोपं कलयति कलं कोकिलगणे
मुदारण्ये भृङ्गे विदधति मुहुर्गुञ्जितभरम् ।
स्मरे हन्तक्रूरे विषमविशिखं कुर्वति करे
समाचक्षे कस्मै निजहृदयदुःखं सुकृतिने ॥८२॥

प्रिय के कुपित (नाराज) हो जाने पर अब जबकि वन में कोकिल समूह कूजन कर रहा है, भृङ्ग मुदित हो बहुशः गुञ्जार कर रहे हैं और हाय क्रूर काम भी विषम बाण हाथ में ले रहा है, उस समय मैं किस सुकृती के समक्ष अपने हृदय की वेदना प्रगट करूं ।

यथा वा—

यस्य प्राणपतेः कृते प्रतिदिनं भीतिर्गुरोरुज्झिता
वृद्धस्यातिविरुद्धजल्पितमपि स्वच्छन्दमङ्गीकृतम् ।
दृष्टं कष्टमशेषकाननलसदगुञ्जादिकुञ्जालयं
कोपस्तत्र विकाशितस्सखि मया धिक्चेष्टितं वेधसः ॥८३॥

प्रतिदिन प्राणपति के लिए हमने गुरुजनों के भय का त्याग किया, वृद्ध (श्वसुर) महोदय के अत्यन्त विरुद्ध जल्पित (बकवास) को भी स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया, घने जंगल में गुञ्जा आदि लताओं से उलझे हुए कुञ्ज गृहों में अशेष कष्टों को सहा है, उसी प्रिय के प्रति मैंने क्रोध कर डाला, हे सखि मेरे भाग्य (भाग्य विधाता ब्रह्मा की इच्छा) को धिक्कार है ।

स्वाधीन पतिका—

स्वाधीनस्तु पतिर्यस्याः स्नेहसौन्दर्यहेतुभिः ।
स्वाधीनपतिका सेह कविभिस्समुदीरिता[1] ॥४१॥

जिसका पति स्नेह सौन्दर्य आदि के कारण उसके वशीभूत है, उसे कविजन स्वाधीनपतिका कहते है ।

---

१. कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम् ।
विचित्रविभ्रमा सक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका । सा. द. ३.८३

यथा—

किं युवा न सखि वा सुलोचने कामिनी किमुत नावनीतले ।
किन्निदानमिह दानवारिणा त्यज्यते मम न गेहदेहली ॥८४॥

हे सुलोचने, क्या मेरा पति युवा नहीं है, अथवा पृथिवीतल पर कोई और कामिनी नहीं है ? क्या कारण है, जो असुरनिषूदन मेरे घर की देहली नहीं छोड़ते ।

यथावा—

वसन्तु धरणीतले सखि परे युवानो जनाः
मनागपि मुरद्विषो न कलयन्तु साम्यम्पुनः ।
मयां गुरुभियाऽनिशं यदपि हन्त संवारितः
तथापि मम सन्निधिं त्यजति नो सुरेशानुजः ॥८५॥

हे सखि, धरणीतल पर अनेकों युवक भले ही हों, किन्तु वे मुरारि के साथ थोड़ी भी समानता नहीं कर सकते । मैंने गुरुजनों के भय से सदा उसे मना किया है, किन्तु हाय वह उपेन्द्र (कृष्ण) फिर भी मेरा सान्निध्य नहीं छोड़ता है ।

अभिसारिका—

तत्कालोचितवेषा तु या चापि सरति प्रियम् ।
रसशास्त्रविदा चात्र कीर्त्तिता साभिसारिका[1] ॥४१॥

जो समय के अनुरूप वेष धारण करके प्रिय के पास जाती है, उसे रसशास्त्र के विद्वान् अभिसारिका नायिका कहते हैं ।

यथा—

यन्तारं परिकल्य[2] दर्पणमसौ स्वान्तं हयं चोन्नतं
प्रीतिं चारु कशां निशां सहचरीं चञ्चद्रथं सत्पथम् ।
खेलद्बालकुरङ्गलोचनचमत्कारापकारीक्षणा
स्वैरं स्वैरमुदाररङ्गभवनं सङ्गच्छति प्रेयसः ॥८६॥

दर्पण को सारथी, अपने उन्नत उरोजों को अश्व, प्रीति को कशा (गति को तीव्र करने वाला कोड़ा), रात्रि को सहचरी तथा सुन्दर रास्ते को चमचमाता रथ बनाकर, चंचल बाल-मृगी के नेत्रों की भांति चंचल नेत्रों वाली (अभिसारिका) स्वच्छन्द रूप से प्रिय के मनोरम रङ्गभवन को जा रही है ।

---

१. अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा ।
स्वयं वाभिसरेत्कान्तं धीरैरुक्तभिसारिका ॥सा.द. ३.७६ ।

२. दर्पकम् क. ख.

यथावा—

उदिते शशिनि विशदवरवसना हसितविशोभितसुललितदसना ।
मलयजकुसमविभूषितकाया प्रियमभिगच्छति मदनसहाया ॥८७॥

चन्द्रमा के उदित होने पर शुभ्र मनोरम वस्त्रों वाली, मुस्कराहट से सुशोभित सुललित दांतों वाली, चन्दन और पुष्पों से सुशोभित शरीर वाली नायिका (अभिसारिका) मदन सहित प्रिय के पास जा रही है ।

प्रोष्यत्पतिका—

गन्तुमुत्कण्ठितो यस्याः प्रियो देशान्तरं प्रति ।
सा प्रोष्यत्पतिका प्रोक्ता रसशास्त्रविशारदैः ॥४२॥

जिसका प्रिय देशान्तर को जाने को उद्यत है उस नायिका को रसशास्त्र के विद्वान् प्रोष्यत्पतिका कहते हैं ।

यथा—

प्रातः कार्यवशात्कृशाङ्गि दयिते यास्यामि देशान्तरं
श्रुत्वेदं कुलिशाभिघातसदृशं तीव्रं वचः प्रेयसः ।
नोक्तं किञ्चिदमन्दपङ्कजदृशा प्रेम्णे मनोजन्मने
दत्तं चास्रमजस्रमञ्जनतिलैःसार्धं पयः केवलम् ॥८८॥

'हे कृशाङ्गि प्रिये, मैं प्रातः काल कार्यवश देशान्तर को जाऊंगा' वज्राघात सदृश प्रिय के इन कठोर वचनों को सुनकर विशाल कमल के सदृश नेत्र वाली कामिनी ने कुछ नहीं कहा केवल अञ्जनरूप तिल सहित निरन्तर प्रवहमान अश्रुरूप जल की अञ्जलि प्रेमरूपी मनोभव को अर्पित करने लगी ।

यथा वाः—

समन्तात् संजाते वनभुवि ॥८९॥

समन्तात् इत्यादि १.१० पृ० २७ द्रष्टव्य है ।

उत्तमा—

सागस्यपि प्रिये[१] या तु हितमाचरति स्फुटम् ।
सैवोत्तमा समाख्याता काव्यशास्त्रे मनीषिभिः ॥४३॥

सापराध प्रियतम के प्रति भी जो स्पष्ट ही हित आचरण करती है, उसे काव्यशास्त्र के आचार्य उत्तमा नायिका कहते हैं ।

---

१. सागसि प्रियतमे इति क ख.

यथा—

नीता निशा सह मया यदि नादरेण
किन्तेन नाथ हृदये ह्रियमातनोषि ।
इत्थं निगद्य मृगशावदृशाऽभिरामैः
साचिस्मितैरपिहितो दयितापराधः[1] ॥६०॥

हे नाथ, यदि आपने मेरा आदर न करके मेरे साथ रात्रि नहीं बिताई, तो इससे हृदय में लज्जा क्यों कर रहे हो ? ऐसा कहकर मृग छौने की भांति नेत्रों वाली नायिका ने मधुर मञ्जु मुस्कान से उसके अपराध को ढंक दिया ।

मध्यमा—

"अपि प्रियकरे कान्ते याप्रियाप्रियकारिणी ।
मध्यमा सा च सम्प्रोक्ता काव्यशास्त्रे विपश्चिता" ॥४४॥

जो कान्त के अप्रियकारी होने पर भी कभी प्रिय व्यवहार करती हैं और कभी अप्रिय । उसे काव्यशास्त्र के विद्वान् मध्यमा नायिका कहते हैं ।

यथा—

कोपिन्याः पदलक्ष्मणाभिवलितं वक्षोजयुग्माङ्कितं
कान्तं वीक्ष्य विदूरतश्च सुदृशा दृष्टिर्दिवि स्थापिता ।
सम्प्राप्ते पुनरन्तिकं च दयिते काकुव्रजव्याकुले
सानन्दं स्मितधोरणीभिरभितश्शुभ्रीकृतोर्वी द्रुतम् ॥६१॥

कोपिनी अन्या के पादाघात-चिह्न से और आलिङ्गन से समुद्भूत उरोजों के चिह्न से अंकित प्रिय को दूर से ही आते हुए देख कर सुनयना ने अपनी दृष्टि आकाश में स्थापित करली अर्थात् आकाश की ओर देखने लगी, और फिर कोपिनी के व्यंग्यवाणों से व्याकुल होते हुए प्रिय के निकट आने पर आनन्दपूर्वक मुस्कान की वर्षा से पृथिवी को तत्काल शुभ्र बना डाला ।

अधमा—

कान्ते प्रियकरे या च भृशं कोपपरायणा ।
सैवाधमा समाख्याता पतिसन्तापकारिणी ॥४५॥

प्रियकारी कान्त के प्रति भी जो अतिशय क्रोध करती रहती है, पति को सन्तप्त करने वाली उस नायिका को अधमा कहा जाता है ।

---

१. 'मृगदृशा सुदृशा' क

यथा—

येन स्वल्पगतेन नापि वनिता सम्भाषितान्या हृदा
भूयो येन तवाभिलाषनिचयः सर्वत्र सम्पादितः ।
तस्मिन्नेव निरागसि प्रियतमे कोपः समारोपितो
धिक्त्वामस्तु सुलोचनेऽथ बहुलं वाचा किमावेदये ॥९२॥

हे सुलोचने जिसने कभी थोड़ी देर भी हृदय से (प्रेम पूर्वक) किसी अन्य स्त्री से सम्भाषण भी नहीं किया, और जिसने सदा ही तुम्हारी अभिलाषाओं को पूर्ण किया है; उसी निरपराध प्रिय के प्रति तुमने कोप कर रखा है, मैं वाणी से तुम्हें बहुत क्या कहूं, तुम्हें तो धिक्कार है ।

(सखी)—

परिहासमुपालम्भन्तथा शिक्षां च मण्डनम् ।
या करोति मुदा सा तु सखीह समुदीरिता ॥४६॥

जो प्रसन्नता पूर्वक नायिका के साथ परिहास उपालम्भ शिक्षा और उसका मण्डन इत्यादि करती है, उसे सखी कहा जाता है ।

परिहासो यथा—

कुब्जानुरागिमनसो मधुसूदनस्य
प्राणप्रियासि सरलाऽसि किमालि चित्रम् ।
इत्थं निशम्य वचनं कुतुकात्सखीनां
सात्राजिता स्मितमुखी नितराम्बभूव ॥९३॥

'हे सखि इसमें आश्चर्य की क्या बात है कि तुम कुब्जा के अनुरागी मधुसूदन की प्राणप्रिया हो और बड़ी सरल हो, इत्यादि सखियों के कौतूहलपूर्ण वचनों को सुनकर वह अजिता उस समय अत्यधिक मुस्कुरा उठी ।

उपालम्भो यथा—

लीलालतागृहवरे सहसागतायाः
फुल्लारविन्दपरिनिन्दकलोचनायाः ।
पञ्चाशुगाशुगचयेन विदारितायाः
कोऽयं क्रमस्तव सखे कुरुषेऽपमानम् ॥९४॥

हे मित्र यह तुम्हारा क्या ढंग है, जो सुन्दर लीला लतागृह में सहसा आई हुई, विकसित कमलों को भी नेत्रों से तिरस्कृत करने वाली सुन्दरी, जो कि कामदेव के बाणों से विदीर्ण थी, का तुम अपमान करते हो ।

शिक्षा यथा—

संयाहि याहि मधूसूदनसन्निधाने,
मानेन तञ्च चरणे सखि पातयेथाः ।
इत्थं मुहुः सहचरीम्परिभाषयन्ती
लीलाम्बुजेन सुमुखी निभृतञ्जधान ।।६५।।

हे सखि तुम 'मधुसूदन के पास जाओ, अच्छी तरफ जाओ, और मान के द्वारा उसे चरणों में गिराओ' इस भांति ने बारम्वार कहती हुई सहचरी पर सुसुखी ने लीला कमल से प्रहार किया ।

मण्डनं यथा—

ललिताऽलक्तकरेखानिचयमिषाद्द्यितमानतं सुदृशः ।
चरणनखे विलिखन्ती विहसति मुदितालिका निभृतम् ।।६६।।

सुन्दरी नायिका के चरण नख में अलक्तक की सुन्दर रेखाएं बनाने के माध्यम से पादानत प्रिय का चित्रण करती हुई सखी अत्यन्त प्रसन्न होकर परिहास करती है ।

(दूती प्रकार:)—

संघट्टनपरा चाद्या विरहाधिनिवेदना ।
दूती च द्विविधाऽऽख्याता कविना काव्यनाट्ययोः ।।४७।।

काव्य और नाटक में दूती दो प्रकार की मानी जाती है—(१) संघट्टनकारिणी (मिलाने वाली), (२) विरहवेदना की सूचना देने वाली ।

संघट्टनकारिणीदूती यथा—

विकिरति सघनवने बहुनीरम्
मुहुरपि कलयति रवमतिधीरम् ।
स्मर सरसीरुहमुखि निजवचनं
त्यजसि किमालि हरिं रतिवचनम् ।।६७।।

हे कमल की भांति सुन्दर मुख वाली, हरि सघन वन में बहुत जल छिड़क रहे बारम्बार अति अधीर शब्द कर रहे हैं, जरा अपने वचन तो स्मरण करो, रति का निवेदन करने वाले हरि को क्यों छोड़ रही हो ।

विरहनिवेदना दूती यथा—

कृतनलिनीदलशयना मुञ्चति नयनाम्बुनो निचयम् ।।
तव विरहे सति राधा मुरहर बाधाभरन्तनुते ।।६८।।

हे मुरारि तुम्हारे विरह में राधा नलिनी दल की शय्या बना कर पड़ी है आंखों से आंसू बहा रही है, और अत्यन्त दुःखी हैं।

इत्यालम्बनविभाववर्णने नायिका निरूपणम्

आलम्बन विभाव वर्णन में यह नायिका निरूपण समाप्त हुआ।

अथ नायक वर्णनम्

पतिश्चोपपतिश्चैव वैशिकश्च तथाऽपरः ।
नायकस्त्रिविधः प्रोक्तो रसशास्त्रविपश्चिता ।।४८।।

नायक वर्णन :—

रस शास्त्र के विद्वानों ने नायक के तीन प्रकार माने है :—पति उपपति और वैशिक।

(तत्र पतिः)—

पाणिं गृह्णाति यत्नेन विधानैः श्रुति सम्मतैः ।
पतिः स एव सम्प्रोक्तः सकलैः कविकोविदैः ।।४९।।

समस्त कविकोविद उस नायक को पति मानते है, जो वेद विहित विधान से [नायिका का] पाणिग्रहण करता है।

पतिः यथा—

शार्दूलद्विपचर्मसु प्रियतमा स्थाप्या न चापि क्षणम् ।
तल्पं पल्लवकल्पमत्रभवने कुत्रास्ति भिक्षाशिनः ।
इत्यालोच्य चिराय चारुहृदयः शैलाधिराजात्मजाम्
अङ्के संविनिधाय देव भवतो भव्याय भूयाच्छिवः ।।६९।।

प्रियतमा को सिंह और हाथी के चर्म पर क्षण भर के लिए भी नहीं बिठाना चाहिए, परन्तु भिक्षाभोजी के भवन में पल्लव निर्मित शय्या कहां है ? यह सोच कर जिस सुन्दर हृदय शिवने शीघ्र ही शैलाधिराज की पुत्री (पार्वती) को अंगों में समाहित कर लिया वे आपका कल्याण करें।

पति भेदाः—

अनुकूलस्तु सम्प्रोक्तो दक्षिणो धृष्ट एव च ।
शठश्च कविभिः काव्ये पतिरेवं चतुर्विधः ॥५०॥

कवियों ने काव्यों में पति के चार प्रकार स्वीकार किये हैं :—अनुकूल दणिण धृष्ट और शठ ।

अनुकूलः

एकनारीव्रतो यस्तु परनारीपराङ्मुखः ।
अनुकूलस्तु विज्ञेयः श्रेष्ठः सर्वजनादपि[1] ॥५१॥

जो पति एकनारीव्रत वाला तथा पराई स्त्रियों से पराङ् मुख हो उसे अनुकूल पति कहते हैं। सभी प्रकार के पतियों में यह श्रेष्ठ माना जाता है ।

यथा—

पारीन्द्राहिकरीन्द्रशीलितवनं यास्ये कथं जानकीं
नीत्वेमामथ हन्त कुत्र नयने धास्ये तदास्याद्दृते ।
इत्यालोच्य चिराय चेतसि तदा सन्देहदोलायितो
रामः पङ्कजचारुलोचनयुगे द्रागम्बुबिन्दून्दधौ ॥१००॥

सिंह सर्प और हाथियों से युक्त वन में सीता को लेकर कैसे जाऊंगा, पर हाय उसके मुख से भिन्न अन्य स्थलों पर मेरे नेत्र कहां टिक सकेंगे। इस प्रकार मन में देर तक सोचते हुए सन्देह में दोलायमान राम के कमल की भांति सुन्दर नेत्रों में आंसू आ गये ।

दक्षिणः—

निजपत्नीषु सर्वासु यस्य स्नेहोदयस्समः ।
स एव दक्षिणः प्रोक्तः कविना च मनीषिणा[2] ॥५२॥

कवि और आचार्य गण उस नायक को दक्षिण कहते है, जिसका अपनी सभी पत्नियों में समान स्नेह रहता है ।

---

१. अनुकूल एक निरतः । सा.द. ३.३७
२. एषु त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः । सा.द. ३.३५

यथा—

एतासु क्षितिभृत्सुतासु नियतं तुल्योऽनुरागोदयो
दास्ये नारदलब्धपाणिकुसुमं कस्यै न कस्यै पुनः ।
इत्थं चेतसि चिन्तयन्क्षणमथ स्वर्गाधिपस्थापितं
श्रीकृष्णो वरपारिजातकुसुमान्[1] हर्त्तुञ्चकारोद्यमम् ॥१०१॥

इन सभी राजपुत्रियों में मेरा स्नेह समान है, अतः नारद के हाथ से प्राप्त यह पुष्प मैं किसे दूं और किसे न दूं, इस प्रकार क्षण भर चित्त में विचार करते हुए इन्द्र पर स्थापित पारिजात के पुष्प का हरण करने के लिए श्रीकृष्ण ने प्रयत्न किया ।

धृष्टः—

कृतदोषोऽपि निश्शंको वारितश्चाप्यवारितः ।
धृष्टः स एव सम्प्रोक्तस्त्रपात्यक्तकलेवरः[2] ॥५३॥

जो अपराध करके भी निश्शंक रहता है, निषेध करने पर भी अनिषिद्ध ही रहता है, तथा जिसने लज्जा को छोड़ ही दिया है, उसे धृष्ट नायक कहा जाता है ।

यथा—

निष्काशितोऽपि सविधाद् बहुधा सखीभिः
सम्भर्त्सितोऽपि विषमैरनिशं वचोऽभिः ।
दुर्वार एष बहुवेषधरो विधत्ते
गेहं समेत्य पुनरेव कुतूहलानि ॥१०२॥

इसे सखियों ने अनेक बार निकाल भी दिया है, अनेक बार कष्ट कर वचनों से इसकी भर्त्सना भी की गयी है, फिर भी यह बहु रूपिया घर में आकर कुतूहल करता ही है ।

शठः—

नारीविषयकव्याजकोविदः शठ उच्यते ।[3]

नारी विषयक बहाना बनाने में चतुर नायक को शठ कहते हैं ।

---

१. मुदितम् क. ख.

२. कृतागा अपि निश्शंकस्तर्जितोऽपि न लज्जितः ।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः ॥ सा. द. ३.३६ ।

३. '..................शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः ।
दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति । सा.द. ३.३७

यथा—

आगत्य केलिभवनन्निभृतं प्रियायाः
पाणिद्वयेनकलयन्नयनाऽपिधानम् ।
कोऽयं सखीति सुदृशः परिभाषयन्त्याः
धूर्त्तश्चुचुम्ब वदनाम्बुरुहञ्चिराय ॥१०३॥

प्रेयसी के एकान्त घर में आकर दोनों आखों से नेत्र बन्द करता हुआ, तथा हे सखि 'यह कौन है ?' ऐसा पूछते हुए पहचाने का प्रयत्न करने पर उस धूर्त ने बारम्बार कमलमुखी के मुख का चुम्बन किया ।

उपपतिः—

आचारहानिकरणः पतिश्चोपपतिः स्मृतः ॥५४॥

नायिका के चरित्र को भ्रष्ट करने वाले नायक को उपपति कहते हैं ।

यथा—

नापश्वापं गृहपतिरसौ जातरो जातरोषा
निद्रान्न द्रागपि बत गता चागता[1] सा त्रियामा ।
गच्छ स्वच्छःक्षणगिति सखे संलपन्त्या प्रियायाः
पातुं हातुं वदनकमलं नापि दक्षो मुरारिः ॥१०४॥

अभी गृह स्वामी नहीं सोया, जेठानियां भी रुष्ट हैं, स्वयं भी थोड़ी देर भी न सो पाई, और रात बीत गयी है, अतः 'अब ऐसे ही (स्वच्छ ही) चले जाओ' कहती हुई प्रिया के मुख कमल का मुरारि न चुम्बन कर में समर्थ हो रहा है और न छोड़ने में ही समर्थ हो रहा है ।

वैशिकः—

बहुवेश्योपभोगी यस्स एव वैशिको मतः ।
स पुनस्त्रिविधः प्रोक्तश्चोत्तमो मध्यमोऽधमः ॥५५॥

जो अनेक वेश्याओं का भोग करने वाला हो, उसे वैशिकनायक कहते हैं । यह उत्तम मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार का होता है ।

---

१. नागता क. ख.

यथा—

पश्यामि नैव भवने हरिणायताक्षीं
कुत्रापि हन्त धनिना न गता परेण ।
इत्थं विचिन्त्य हृदये वरवारवध्वा
द्वारान्तिके वितनुते दयितो विषादम् ॥१०५॥

मैं मृगनयनी को घर में नहीं देख रहा हूं। हाय, वह कहीं किसी दूसरे सेठ के साथ तो नहीं चली गयी है, ऐसा हृदय में सोचकर प्रिय वेश्या के द्वार के निकट विषाद कर रहा है।

उत्तमः—

दयिताङ्कोपवतीं दृष्ट्वाऽप्युपचारपरायणः ।
उत्तमः स तु सम्प्रोक्तः कविभिः काव्यदृष्टिभिः ॥५६॥

जो नायक (वैशिक नायक) प्रिया के कोपयुक्त होने पर भी उसकी सेवा (खुशामद) में लगा रहता है, उसे कवि और काव्यशास्त्र के आचार्य उत्तम कहते हैं।

यथा—

अन्तः कोपकषायितां विधुमुखीमुद्वीक्ष्य दूरादसौ
मन्दं मन्दमुपेत्य केलिभवनं कृत्वा विनम्रं शिरः ।
साशङ्कं निभृतेन भालफलके खेलत्कुरङ्गीदृशः
कस्तूरीतिलकं विलिख्य नितरामानन्दमाविन्दति ॥१०६॥

चन्द्र मुखी को दूर से ही कुपित देखकर मन्द मन्द उसके पास केलि भवन में जाकर शिर झुकाकर, आशंकित होकर भी चुपचाप खेलती हुई उस मृगनयनी के माथे पर कस्तूरी का तिलक बनाकर अतिशय आनन्द का अनुभव करता है।

(मध्यमः)

प्रियाञ्च कुपितान्दृष्ट्वा नानुरागं न वा रुषम् ।
प्रकाश्यते स एवात्र मध्यमः कविभावितः ॥५७॥

जो प्रिया को कुपित देखकर न अनुराग प्रगट करता है और न रोष, उसे कविजन मध्यमनायक कहते हैं।

यथा—

नयनयोरधुनैव सुशोणिमा त्वदधरेण वरोरु समर्पितः ।
कुचचयेन कदा निजबन्धनं वद वचोनिचये सुतनो धृतम् ॥१०७॥

हे सुजघने तुम्हारे अधरों ने अपनी लालिमा अभीं अभी आंखों को सौंप दी है, किन्तु हे सुतनु ! उरोजों ने अपना बन्धन वाणी को कब दे डाला ?

अधमः—

त्रपया कृपया त्यक्तः क्रीडायामतिदारुणः ।
कविना च समाख्यातः स एवाधमनायकः ॥५८॥

जिसे लज्जा ने पूर्णतः त्याग दिया हो, तथा जो कामक्रीडा में अति दारुण हो, कविजन उसे अधमनायक कहते है ।

यथा—

गणयति बहुविधदोषं नहि परितोषं क्षणम्भजते ।
कलयति गतापराधामपि बहुबाधामयीमधमः ॥१०८॥

नायिका में बहुविध दोष मानता है, एक क्षण भी तृप्ति का अनुभव नहीं करता, तथा अपराधयुक्त और बहुबाधामयी होने पर भी उसे अधमनायक प्राप्त करता है।

शठः—

अन्तर्भूतः शठो ज्ञेयो मानी च चतुरो द्विधा ।
वचो व्यङ्ग्यकरश्चैव चेष्टाव्यंग्यकरस्तथा ॥५९॥

शठ नायक अन्तर्भूत प्रकृति का होता है, इसके दो प्रकार हैं : मानी और चतुर । चतुर के पुनः दो प्रकार हैं वाग्व्यंग्यकर, चेष्टाव्यंग्यकर ।

मानी यथा—

पीयूषद्रवशिक्षया तव सखे वागेव सन्निर्मिता
स्वान्तं तावकमश्मभिर्विरचितं दुश्चेतसा वेधसा ।
इत्याकर्ण्य मृषाभिमानमलिनः कान्तस्य संगच्छतः,
साऽशंकं मृगशावसुन्दरदृशा सद्यो गृहीतं पदम् ॥१०९॥

'हे सखे, बुरे चित्त वाले ब्रह्मा ने केवल तुम्हारी वाणी ही अमृतद्रव के निर्माण का अभ्यास करके बनाई है, किन्तु तुम्हारे हृदय को तो पत्थर से बनाया है ।' मृषा अभिमान से वक्र, आये हुए कान्त के इन वचनों को सुन कर बालमृगी के सदृश नेत्रों वाली भोली नायिका ने आशंकित होकर तत्काल उसके पैर पकड़ लिये ।

वाग्व्यंग्यकरश्चतुरो यथा

मा व्रज यमुनातीरं सम्प्रति नीरेच्छया सहसा
सवितरि नभसि कराले कोऽपि न बाले बहिर्व्रजति ॥११०॥

हे बाले (भोली) इस समय जल लाने की इच्छा से सहसा यमुना तीर पर न जाओ। आकाश में जब कि सूर्य कराल है, अर्थात् तप रहा है, ऐसे समय बाहर कोई नहीं निकलता।

चेष्टाव्यंग्यकरश्चतुरो यथा

विदधति मदनाकारं हृदिरतिपारङ्गमे दयिते।
कलयति लीलाकमलं मुहुरपि करमुद्रितं विदुषी ॥१११॥

जब रति में पारंगत प्रिय हृदय में मदनभावन युक्त होता है अर्थात् कामना करता है, तभी चतुर नायिका लीला कमल को हाथ से पुनः मुद्रित करती है।

पतिश्चोपपतिश्चैव तथा वैशिकनायकः।
प्रोषितोऽपि भवत्यत्र तदुदाह्रियते[1] क्रमात् ॥६०॥

पति उपपति तथा वैशिक नायक प्रोषित भी हो सकते हैं, क्रमशः उनके उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

प्रोषितपतिर्यथा—

इति विचिन्त्य चिरं रघुनन्दनो
मुहुरसिञ्चदुरोनयनाम्बुभिः।
जनकराजसुता हृदयस्थिता भवतु
मा विरहानलतापिता ॥११२॥

ऐसा सोचकर रामचन्द्र बारम्बार वक्षस्थल को आंसुओं से भिगोने लगे कि कहीं हृदय में स्थित जानकी विरहानल से तप्त न हो।

---

१. हृदये इति क

प्रोषित उपपतिर्यथा—

यदकृत गुरुजनभीता पथि सुविनीताऽवलोकनं स्वैरम् ।
सम्प्रति तदेव दीनं कलयति[1] लीनम्मनो विरहे ॥११३॥

जो सुविनीता नायिका गुरुजनों से भय खाती हुई स्वच्छन्दता पूर्वक मार्ग प ही (नायक के आगमन मार्ग पर) देखा करती थी, वही अब विरह में लीन मन को दी बना रही है।

प्रोषित वैशिको यथा—

निश्शंकमङ्कगतया हरिणायताक्ष्या
स्मेरं विधाय परिहाय सखीं यदुक्तम् ।
दूरस्थितोऽपि चिरतो विधिवञ्चितोऽपि
भूयस्तदेव हि सखे हृदये स्मरामि ॥११४॥

हे सखे ! अंक में विद्यमान मृगनयनी ने सखी को छोड़कर निःशंक मुस्कराते हु जो कहा था, भाग्य का मारा मैं प्रिया से सुदूर स्थित होकर भी बहुत समय बाद उ ही पुनः हृदय में स्मरण कर रहा हूँ।

अनभिज्ञ :—

अङ्गहारादिना किञ्चिन्नवेत्ति तरुणीमनः ।
अनभिज्ञः स सम्प्रोक्तः कविभिः काव्यसूरिभिः ॥६१॥

जो नायक अंगहार (चंदन लेपन आदि) से तरुणी नायिका के मन को नहीं प चान लेता, उसे कवि और काव्यशास्त्री अनभिज्ञ नायक कहते हैं।

यथा—

केलीमन्दिरसन्निधौ सखि मया स्मेरं विधायानिशं—
लीलामञ्जुलपङ्कजेन निहितो दूरीकृतो व्रीडया ।
चक्षुश्चारु निरीक्षणेन बहुशः संसेवितोऽप्यानतो
भूमावेष नखैर्लिलेख निभृतं कस्यास्ति तद्दूषणम् ॥११५॥

हे सखि ! चिरकाल तक केलि भवन के निकट मुस्कराते हुए मैंने सुन्दर क्री कमल से लज्जा के कारण उसे हटाया, किन्तु बारम्बार नेत्रों से मधुर निरीक्षण कर हुए सिर झुकाए हुए उस नायक का सम्मान भी किया। फिर भी वह सिर झुकाए हु पदनख से चुपचाप भूमि पर लिखता रहा, इसमें किसका दोष है ?

---

१. 'शीलम् इति क'

नर्म सचिवः

एतेषां नर्म सचिवः कीर्त्तितश्च चतुर्विधः ।
पीठमर्दो विटश्चैव चेटकश्च विदूषकः ॥६२॥

इन नायकों के नर्म सचिव चार माने गए हैं—'पीठमर्द २. विट ३. चेटक और ४. विदूषक ।

पीठमर्दः—

पीठमर्दस्तु विज्ञेयः कुपितस्त्रीप्रसादकः[1] ।

नायक के लिए कुपित स्त्री को प्रसन्न करने वाला पीठमर्द कहलाता है ।

यथा—

मा विमुञ्च रुषमानताननने लोचने च कलय प्रकाशिते ।
चञ्चदेणनिचयः सरोरुहं गर्वदुर्विधतया विषीदतु ॥११६॥

हे आनत आनने, (नम्रमुखी) क्रोध छोड़ो और अपने नेत्रों को प्रसन्न बनाओ जिससे मृग छौने सी ये चंचल आंखें और मुखकमल गर्व के दोष से दुःखी न हों ।

विट—

कामाधिककलातन्त्रकोविदो विट उच्यते[2] ॥६३॥

जो काम कला तंत्र का अधिक जानकार है, उस नर्मसचिव को विट कहते हैं ।

यथा—

कामो नाम समाजगाम सुरभौ[3] भूमीश्वरः कानने
स्वच्छन्दं त्वरितञ्च केलिनिचयं कुर्वन्तु सर्वेजनाः ।
इत्याज्ञापनपत्रनिर्गतवचो भूयः पिके जल्पति
प्रायो नैव विभेषि तन्वि दयितं यन्नैषि पद्मानने ॥११७॥

हे कमलमुखी, काम नामक राजा वसन्त काल में इस वन में आया हुआ है । कोयल बारम्बार उसके आज्ञापत्र को दुहरा रही है कि 'सभी लोग तुरन्त स्वच्छन्दता पूर्वक कामकेलियां करें ।' हे तन्वि, क्या तुम्हें भय नहीं है, जो इस आज्ञा-पालन के लिए प्रिय के पास नहीं जा रही हो ।

---

१. दूरानुवर्त्तिनि स्यात्तस्य प्रासङ्गिकेतिवृत्ते तु ।
किंचित्तद्गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः ॥ सा. द. ३.३९

२. संभोगहीनसम्पद्विटस्तुधूर्त्तः कलैकदेशज्ञः ।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम् ॥ सा. द. ३.४१

३. सुरतौ इति क

चेटकः

सन्धानचतुरो यस्तु चेटकः समुदाहृतः ।

जो संधान (मिलाने की व्यवस्था) में चतुर हो उसे चेटक कहा जाता है ।

यथा—

केलीवनेषु मधुसूदनसन्निधाने
पद्माभिरामनयना समुपागताऽसौ ।
दृष्ट्वेति चारुकुसुमावचयच्छलेन
स्थानान्तरं सहचरस्समुपेत्य तस्थौ ॥११८॥

केलिवन में मधुसूदन के निकट कमल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली उस नायिका को आई हुई देखकर सुन्दर पुष्पों के चयन के बहाने वह सहचर अन्यत्र जाकर ठहर गया ।

विदूषकः

हास्यञ्च येन केनापि कारयन्ति विदूषकाः[1] ॥६४॥

जो जिस किसी भी उपाय से हंसाते रहता है, उसे विदूषक कहते हैं ।

यथा—

श्यामेन हन्त दयितेन समम्प्रयासि
श्यामा भविष्यसि सुकेतकगर्भगौरि ।
इत्थं निशम्य वचनानि विदूषकस्य
साचिस्मितं कृतवती निभृतेन राधा ॥११९॥

हे केतक पुष्प के सदृश गौर वर्ण वाली, हाय तुम प्रिय श्याम के साथ जा रही हों, तुम भी श्यामा (काली) हो जाओगी, विदूषक के इन वचनों को सुनकर राधा चुपचाप मधुर मुस्कान करने लगी ।

इति विभाव निरूपणम्

यह विभावनिरूपण नामक द्वितीय परिच्छेद पूर्ण हुआ ।

---

१. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥ सा.द. ३. ४२

अथ भावो निरूप्यते

रसानामनुकूलो यो विकारो भाव उच्यते ।
स पुनर्द्विविधः प्रोक्तः शारीरश्चान्तरस्तथा ॥५५॥

रसों के अनुकूल विकार को भाव कहते हैं। यह दो प्रकार का है, शारीरिक और आन्तर।

विकारस्त्वन्यथा भावः ॥

यहां विकार का तात्पर्य भिन्न प्रकार की भावना होना है।

सात्त्विकाः[1]

ये च सात्त्विकनामानः शारीरास्ते प्रकीर्त्तिताः ।
स्थायी च व्यभिचारी च कविभिश्चान्तरस्थितः ॥६४॥
सत्त्वं च जीववान् देहस्तस्य धर्मास्तु सात्त्विकाः ।
व्यभिचारीप्रभृतयश्चान्तरा न तु सात्त्विकाः[2] ॥६७॥

शारीरिक विकारों को सात्त्विकभाव कहते हैं, तथा स्थायी या व्यभिचारी भाव आन्तर कहाते हैं। क्योंकि जीवयुक्त देह को सत्त्व कहते हैं, अतः देह के भावों को सात्त्विक कहा जाता हैं। व्यभिचारि आदि भाव आन्तर भाव हैं, सात्त्विक नहीं।

के ते पुनः सात्त्विका :—

स्वेदः स्तम्भोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलयः इत्यष्टौ सात्त्विकाः मताः[3] ॥६८॥

तो सात्त्विक भाव कौन कौन है ?—

स्वेद स्तम्भ रोमाञ्च स्वरभङ्ग वेपथु (कम्पन) वैवर्ण्य (मुखका रंग बदल जाना) अश्रु तथा मलय ये आठ सात्त्विक भाव कहलाते हैं।

---

१. सत्त्वमात्रोद्भवत्वात्ते भिन्ना अप्यनुभावतः । सा. द. ३-१३५.

२. सात्त्विकाः मताः क

३. स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥सा. द. ३.१३५-१३६.

स्वेदो[1] यथा—

पत्रावलीं वरतनो वितनोतु का ते,
भाले कपालफलके विमले च भूयः ।
केनापि चाद्य जनितेन हृदि स्मृतेन,
स्वेदाम्बुनैव परिलुम्पसि तां यतस्त्वम् ॥१२०॥

हे सुन्दरि, तुम्हारे शरीर पर पत्र रचना कौन करे, क्योंकि हृदय में किसी (प्रिय) के स्मरण से भाल और निर्मल कपोलों पर उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से तुम बारम्बार उसे मिटाये जा रही हो ।

स्तम्भो[2] यथा —

आयाति देवि कुशली रघुवीरनामा,
श्यामाम्बुवाहरुचिरस्तव जीवनाथः ।
इत्यादरान्निगदिते कपिराजदूते,
स्तम्भावरुद्धतनुराशु बभूव सीता ॥१२१॥

हे देवि श्याम मेघ की भांति सुन्दर तुम्हारे प्राणनाथ कुशली रघुवीर आ रहे हैं—इस प्रकार हनुमान के सादर निवेदन करने पर सीता तत्काल **स्तम्भ** से अवरुद्ध शरीर वाली हो गयी ।

रोमाञ्चो[3] यथा—

तत्रागतः सुमुखि वारिधराभिरामो
दामोदरो वदनपङ्कजमोक्षितुं ते ।
इत्यादरेण वचनं विनिशम्यवामा
रोमाञ्चकैश्च कुसुमैर्वपुरञ्चति स्म ॥१२२॥

हे सुमुखि, मेघ की भांति अभिराम दामोदर तुम्हारा मुखकमल देखने के लिए वहां आये हुए हैं, बाला मुग्धा इन वचनों को सादर सुनकर रोमाञ्चरूपी पुष्पों से अपने को सजाने लगी ।

---

१. वपुर्जलोद्गमः स्वेदो रतिघर्मश्रमादिभिः । सा.द. ३.१३७

२. स्तम्भश्चेष्टा प्रतीघातो भयहर्षोभयादिमिः । वही ३.१३६

३. हर्षाद्भुतभयादिभ्यो रोमाञ्चो रोमविक्रिया । वही ३.१३७

स्वरभङ्गो[1] यथा—

हरिकथासु वृथा चतुरेऽधुना, कलयसि प्रमदव्रजगोपनम् ।
हृदयभावचयस्तवगद्गद-स्वरवरेण वरोरु निवेदितः ॥१२३॥

हे चतुरे, तुम व्यर्थ ही अब हरि कथा से प्रमद वन की बात छिपा रही हो क्यों कि हे वरोरु, तुम्हारे गद्गद स्वर ने तुम्हारे हृदयगत भावों को पहले ही प्रगट कर दिया है ।

वेपथुः[2] यथा—

दूरागतेन दयितेन निरीक्षितायाः
पंकेरुहायातदृशो गुरुमध्यगायाः ।
सद्यः सुहृद्यरसनारवकैतवेन,
कम्पो जगाद कुशलं भृशलज्जितायाः ॥१२४॥

दूर से आये हुए प्रिय द्वारा निरीक्षित गुरुजनों के मध्य विद्यमान कमल की भांति विशाल नेत्रों वाली अतिशय लज्जित नायिका के कम्पन ने ही मधुर रसनाध्वनि के बहाने तत्काल ही उसके कुशल को कह डाला ।

वैवर्ण्यं[3] यथा—

चाणूरं मदशालिनं कुवलयापीडं निपीड्याचिरात्
कंसध्वंसविधिं विधाय भगवान्नन्दालयं नागतः ।
इत्याकर्ण्य कुवर्णशीलितवचः स्वर्णारविन्दानना
वैवर्ण्यं व्रजवल्लभस्य वनिता सद्यस्तनौ सन्दधौ ॥१२५॥

मदमत्त चाणूर एवं कुवलयापीड को मारकर और शीघ्र ही कंस का भी वध करके भगवान् कृष्ण नन्दभवन को नहीं लौटे, इन कुवर्णयुक्त वचनों को सुनकर स्वर्ण कमल की भांति मुखवाली व्रजप्रिय कृष्ण की प्रेयसी राधा का शरीर तत्काल ही विवर्ण हो गया ।

---

१. मदसंमदपीडाद्यैर्वैस्वर्यं गद्गदं विदुः ॥सा.द. ३.१३८
२. रागद्वेषश्रमादिभ्यः कम्पो गात्रस्य वेपथुः । वही ३.१३८
३. विषादमदरोषाद्यैर्वर्णान्यत्वं विवर्णता । वही ३.१३९

अश्रुपातो[1] यथा—

दूरस्थितञ्च दयितं समुपागतञ्च
दृष्ट्वाऽश्रुबिन्दुनिचयः सुतनोः पपात ।
शंके तदीयरुचिराक्षियुगेन सद्यो
नीराञ्जलिश्च[2] विरहाय महानदायि ।।१२६।।

दूरस्थित प्रिय को आया हुआ देखकर सुतनु (सुन्दरी) के (प्रसन्नतावश) आंसू बहने लगे, मानों उसकी सुन्दर दोनों आंखों ने तत्काल विरह को महान् नीराञ्जलि प्रदान की हो ।

प्रलयः[3]—

प्रलयस्सुखदुखाभ्यां चेष्टाज्ञाननिराकृतिः ।।

सुख अथवा दुःख के कारण चेष्टा एवं ज्ञान का निराकरण हो जाना प्रलय कहलाता है ।

यथा—

परस्पराश्लेषनिबद्धगात्रयोः
क्रियाः ह्रिया सार्धमहो बहिर्गताः ।
ध्रुवं मनस्तीव्रविषाभिसङ्कुलैः
स्मरेण यूनोर्निहतं शिलीमुखैः ।।१२७।।

परस्पर आलिङ्गन में आवद्ध शरीर वाले युवा दम्पतियों की क्रिया भी लज्जा के साथ बाहर निकल गयी । मानों कामदेव ने विष में बुझे हुए बाणों से दोनों युवक-युवतियों के मन पर प्रहार किया हो ।

इति भाव निरूपणम्

---

१. अश्रुनेत्रोद्भवं वारि क्रोधदुःखप्रहर्षजम् । सा.द. ३.१३६

२. नीलाञ्जलिः इति क. ख.

३. प्रलयः सुखदुःखाभ्यां चेष्टाज्ञाननिराकृतिः ।।सा.द.३.१३६

अथ स्थायी भावो निरूप्यते

यथोक्तम्भरतेन—

"सजातीयविजातीयै र्योभावै र्न पिधीयते ।

सोऽन्यभावात्मभावत्वग्राहकः स्थायिशब्दभाक् ॥"

अग्रिम पंक्तियों में स्थायीभावों का निरूपण किया जा रहा है । जैसा कि भरत ने कहा है :—

वह भाव जो अन्य सजातीय अथवा विजातीय भावों से आच्छन्न नहीं होता, तथा अन्य भावों को स्वयं में समाहित कर लेता है, उसे स्थायी शब्द से अभिहित किया जाता है ।

"अभिव्यञ्जकवैकल्यादसम्पूर्णो भवत्ययम् ।

विभावादिश्च विद्वद्भिरभिव्यञ्जक उच्यते ॥"

अभिव्यञ्जकों के अभाव में वह (स्थायी भाव) अपूर्ण रहता है, तथा विभाव आदि उसके अभिव्यंञ्जक कहे जाते हैं ।

रतिः शोकस्तथा हासः क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।

जुगुप्साविस्मयश्चैव स्थायिनो नवमः शमः ॥

रति शोक हास क्रोध उत्साह भय जगुप्सा और विस्मय तथा नवम शम ये स्थायिभाव हैं ।

रति :—

मनोऽनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनं रतिः[1] ॥६६॥

मन के अनुकूल पदार्थों में सुख की संवेदना को **रति** कहते हैं ।

यथा—

भवति यदपि तप्तं दुर्जनेनानलेन

प्रचुरगुरुघनेन स्वेच्छया ताडितञ्च ।

स्वजननिकषमध्ये किञ्चिदप्यञ्चितं तत्

त्यजति न रुचिरत्वं सुभ्रुवः प्रेम हेम ॥१२७॥

सुभ्रु का प्रेमरूपी सुवर्ण यद्यपि दुर्जनरूपी अग्नि से तपता है, अनेक गुरुजनरूपी घन से ताडित होता है, तथा स्वजनरूपी कसौटी पर किसी भी प्रकार परीक्षित होता है, फिर भी अपनी रुचिता को छोड़ता नहीं ।

---

१. रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम् । सा.द. ३.१७६

अत्र किञ्चिदप्यनेनापूर्त्तिः ।

यहां 'किञ्चिदपि' शब्दों द्वारा प्रतीत होने वाली अपूर्णता की आपूर्ति से रति की व्यञ्जना होती है, अतः वे पद रति के व्यञ्जक हैं।

शोक –

इष्टनाशेन चित्तस्य विक्लता शोक उच्यते[1] ॥

इष्टनाश से चित्त की विकलता को **शोक** कहते है।

यथा—

निष्कुञ्जेष्वलिगुञ्जितेन मधुरालापेन किम्बर्हिणा
किं वा मञ्जुलपल्लवैश्च कुसुमैर्गन्धोत्तमैः शाखिनाम् ।
इत्थं हन्त विमृष्य चेतसि चिरं गोपाल वृन्दावने
मुञ्चन्ति व्रजवल्लवाम्बुजदृशो नेत्राम्बुनः शीकरान् ॥१२८॥

[उद्धव कृष्ण को व्रजवनिताओं की स्थिति बताते हुए कहते हैं –]

वृन्दावन में, कुञ्जों में भ्रमरों के गुञ्जार से, अथवा मयूरों के मधुर आलाप से, अथवा वृक्षों के सुन्दर पल्लव कुसुम और उत्तम गन्ध से क्या ? [यदि गोविन्द नहीं हैं] हे गोपाल इस प्रकार वृन्दावन में विचार करके ! व्रजगोपों की कमलनयनियां अश्रुबिन्दु बरसा रही हैं।

अत्र शीकरपदात्पूर्त्तिः ।

यहां सीकर पद शोक स्थायि भाव का व्यञ्जक है।

हास :—

वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते[2] ॥७०॥

राग अदि के विशिष्ट विकारों से चित्त का विकास हास स्थायिभाव कहाता है।

---

१. इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक् । सा.द. ३.१७७

२. वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते । वही ३.१७६ ।

यथा—

प्राप्ते पाणिग्रहणसमये व्यालफूत्कारजालं
श्रुत्वा[1] चक्रे सपदि गिरिजा घोरचीत्कारमुच्चैः ।
एतद्दृष्ट्वा द्रुतमथ तदाष्वासनासक्तचेतः
स्वैरस्मेरस्फुरितवदनश्शंकरश्शंकरोतु ॥१२९॥

अत्र स्वैरपदादपूर्त्तिः ।

पाणि ग्रहण का अवसर उपस्थित होने पर सर्प की फुफकार को सुनकर पार्वती उच्च स्वर से तत्काल चीत्कार कर उठी, इसे देखकर शीघ्र ही उसे आश्वस्त करते हुए उन्मुक्त हास्य से स्फुरित मुख वाले भगवान् शंकर आपका कल्याण करें। यहां स्वैर पद हास का व्यंजक है।

क्रोधः

प्रतिकूलेष्वतैक्ष्णयस्यावरोधः क्रोध उच्यते[2] ।

प्रतिकूल पदार्थों (या व्यक्तियों) के प्रति तीक्ष्णता के अभाव के अवरोध को अर्थात् तीक्ष्ण होने को क्रोध कहते हैं।

यथा—

आवृतं कृष्णमावीक्ष्य विपक्षहरिणी दृशा ।
चकार किञ्चित्कुटिलं राधिका भ्रुकुटीद्वयम् ॥१३०॥

अत्र किञ्चित्पदात्पूर्त्तिः ।

कृष्ण को सपत्न सुन्दरियों से घिरा हुआ देखकर राधिका ने दोनों भृकुटियों को कुछ चढ़ा लिया। यहां किञ्चित् पद क्रोध का व्यञ्जक है।

यथा वा रौद्ररस :

कृत्वा प्रौढप्रतिज्ञां निखिलभटपुरोवर्त्तिना येन पूर्वम्
पीतं दुश्शासनोरस्थलभवरुधिरं दुर्गसंग्रामभूमौ ।
सोऽहं दुर्योधनस्य द्रुपदनृपसुता धर्षिणो मन्दबुद्धेः ।
किञ्चिद् भ्रूभङ्गशीलो गिरिगुरुगदया चोरुमाचूर्णयामि ॥१३१॥

जो दृढ़ प्रतिज्ञा करके पहले समस्त वीरजनों के सामने दुर्गम संग्राम भूमि में दुश्शासन के वक्षस्थल के रक्त का पान करने वाला है, किञ्चित भ्रभंग युक्त वह मैं द्रौपदी का अपमान करने वाले दुर्योधन की जंघाओं को अपनी भारी गदा से चूर्ण कर रहा हूँ।

---

१. श्रुतम् क

२. प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते । सा.द. ३.१७६

अत्र किञ्चित् पदात्पूर्त्तिः ।

यहां किंचित् पद रौद्र रस का व्यञ्जक है।

उत्साह :—

मनोऽभीष्टस्य सम्प्राप्तिरुत्साहः कविभिः स्मृतः[1] ॥७१॥

मन को अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति होने को कविजनों द्वारा उत्साह कहा जाता है।

यथा—

विश्वामित्रेण नीतो जनकनृपकृते रङ्गदेशे प्रचंडम्
दृष्ट्वा कोदण्डमैशं निखिलजनपुरः सीतया वीक्ष्यमाणः ।
प्रोदञ्चद्रोमहर्षावलिवलिततनुर्बालवेशाभिरामो
रामः किञ्चिद्विधाय स्मितमनुजमुखे चारुचिक्षेप चक्षुः ॥१३२॥

अत्र किञ्चित्पदात्पूर्त्तिः

राजा जनक द्वारा आयोजित रङ्गदेश (स्वयंवर) में शिव के प्रचण्ड कोदण्ड को देखकर विश्वामित्र द्वारा ले जाए गये, समस्त लोगों के सामने सीता द्वारा देखे जाते हुए हर्ष, वश उठती हुई रोमावलि से आवृत शरीर वाले, बालवेश में अभिराम रामचन्द्र ने कुछ मुस्कराकर लघुभ्राता लक्ष्मण पर मधुर दृष्टि डाली। यहां किञ्चित्पद उत्साह का व्यञ्जक है।

भयम्—

भयं चित्तस्य वैक्लव्यं रौद्रादिदर्शनेन च[2] ।

भयानक दृश्य आदि देखकर होने वाली चित्त की विकलता को भय कहते हैं।

यथा—

सायं समायातमुदीक्ष्य वल्लभं
शून्यालये कापि नवोढकामिनी ।
सद्यो भयात्किञ्च विशुष्यदानना,
गन्तुं बहिर्हन्त चकार मानसम् ॥१३३॥

अत्र किञ्च पदात्पूर्त्तिः ।

सायंकाल शून्य गृह में पति को आया हुआ देखकर किसी नवोढा कामिनी का मुख भय वश सूखने लगा और हाय वह तुरन्त ही बाहर जाने को सोचने लगी। यहां किं च पद भय का व्यंजक है।

---

१. कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते । सा.द. ३.१७८

२. रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम् । वही ३.१७८

यथा वा शृङ्गारे—

वध्वा शैलोपलौघैरमित[1]जलनिधिं हेलयागत्य पारं
बारं बारं प्रतेनुः प्रबलकपिगणा घोरकोलाहलं च ।
श्रावं श्रावं समन्तात् तमथ निशिचरः किञ्च हीनाननश्रीः
साशङ्कं स्वीयलङ्कां सह कमलदृशा त्यक्तुमीहां करोति ।।१३४।।

अत्र किञ्च पदात्पूर्त्तिः ।

पर्वत की शिलाओं से (सेतुबांधकर) अपार समुद्र को खेल खेल में (बिना विशेष प्रयास के) पार कर प्रबल बन्दरों ने घोर कोलाहल किया; सब ओर उसे बारम्बार सुनकर हीन मुखशोभा वाला असुर (रावण) आशंकित होकर कमलनयनी (मन्दोरी) के साथ लङ्का छोड़ने की कामना कर रहा है । यहां भी किञ्चपद भय का व्यंजक है ।

जुगुप्सा—

जुगुप्सा गर्हितार्थानां दोषसन्दर्शनादिभिः[2] ।।७२।।

गर्हित वस्तुओं के दोष आदि के दर्शन से जुगुप्सा उत्पन्न होती है ।

यथा—

अस्तंगतस्य तरणे र्हरिदम्बुजाक्ष्या
साद्धं विहर्तुममृतद्युतिमभ्युपेतम् ।
दृष्ट्वा विधाय मुखमुद्रणमम्बुजाली
कुत्सापरेव तिमिरावरणान्तरस्था ।।१३५।।

अत्र इव पदात्पूर्त्तिः ।

अस्तंगत सूर्य की दिशारूपी पत्नी के साथ बिहार करने के लिए आये हुए अमृतमय क्रान्तिवाले चन्द्रमा को देखकर कमल पंक्ति मानों कुत्सा परा (घृणाभावनायुक्त) होकर मुखबन्द करके अन्धकाररूपी आवरण के अन्दर हो गयी । यहां इव पद जुगुप्सा का व्यंजक है ।

विस्मयः

विस्मयश्चित्तविस्तारः पदार्थोऽतिशयादिह[3] ।

अतिशय को देख का चित्त का विस्तार विस्मय कहाता है ।

---

१. अमिति क.

२. दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा । सा. द. १७९

३. विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्त्तिषु ।
विस्फारस्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः ।। वही ३.१७९ १८०

यथा—

हत्वा कंसं समरजयिनं तस्य पुर्यान्निवासं
श्रुत्वा[1] हा सन्ततकृतरतेश्चारुमूर्त्ते र्मुरारेः ।
तादृङ्नान्या सपदि वनिता म्लानचित्रायिताऽभूद्-
राधा यादृक् शिव शिव महाक्षोभपाथोधिमग्ना ।।१३६।।

अत्र तादृक् न पदाद् पूर्त्तिः ।

मधुरमूर्त्ति मुरारि समरजयी कंस को मारकर उसकी पुरी में ही निवास कर रहे हैं, यह सुनकर अन्य गोप स्त्रियां उतनी म्लान (दुःखी) और स्तब्ध नहीं हुई, जितनी कि राधा, जो हाय यह सुनते ही महाशोक के समुद्र में ही मग्न हो गयी ।

यथा वा श्रृंगारे

श्रुत्वा चाऽथ विभीषणाच्च[2] जलधेर्बन्धं च शैलोपलैः
उच्चैः वानर सञ्चयस्य परितः कोलाहलं दुःसहम् ।
श्रीमद्रामकराम्बुजादृतधनुष्टंकारमाकर्णयन्
भार्यायाः सविधेऽभवत्क्षणमसौ चित्रायितो रावणः ।।१३७।।

अत्र क्षणपदात्पूर्त्तिः ।

बिभीषण के द्वारा पर्वत की शिलाओं से समुद्र का बन्धन सुनकर, और चारों ओर वानर समूह का दुस्सह कोलाहल तथा भगवान् राम के करकमलों में आदर पूर्वक धारण किसे हुए धनुष के टंकार को सुन कर वह रावण पत्नी के समीप कुछ काल तक चित्र लिखित सा रह गया ।

शमो[3] यथा—

संसारदुःखजलधेस्तरिं[4] धननिभं हरिम् ।
कदा वृन्दावनोपान्ते पश्यामि सखि चक्षुषा ।।१३८।।

सांसारिक दुःखरूपी समुद्र के लिए नौकारूप घनश्याम हरि को मैं वृन्दावन के निकट कब अपनी आंखें से देख सकूंगा ?

इति स्थायि भावाः ।

यह स्थायिभाव निरूपण पूर्ण हुआ ।

---

१. हत्वा क. २. साथ बिभीषणस्य क.

३. शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम् । सा.द. ३.१८०

४. दुर्गजलधेः क

अथ व्यभिचारि भावो निरुप्यते ।

अग्रिम कारिओं में व्यभिचारि भावों का निरूपण है ।

विशेषेणाभितः काव्ये स्थायिनं चारयन्ति ये ।
अनुभावादि हेतूँस्तान् वदन्ति व्यभिचारिणः[1] ।।७३।।

जो सर्वतः काव्य में स्थायिभावों का विशेषरूप से संचार कराते है, तथा जो अनुभावों के हेतु हैं; उन्हें व्यभिचारिभाव कहते हैं ।

यद्वा कर्णभूषण—

विना च नियमेनापि सर्वेष्वपि रसेषु यः ।
भाव उत्पद्यते सोऽत्र व्यभिचारी समीरितः ।।७४।।

जो भाव विना नियम के सभी रसों में उत्पन्न होते हैं, वे व्यभिचारिभाव कहे जाते हैं । (कर्ण भूषण से उद्धृत)

निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमाः ।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहो धृतिः स्मृतिः ।।७५।।
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च ।।७६।।
स्वप्नो विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्था तथोग्रता ।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ।।७७।।
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
त्रयस्त्रिंशदमीभावाः प्रयान्ति च[2] रस स्थितिम् ।।७८।।

निर्वेद ग्लानि शंका असूया मद श्रम आलस्य दैन्य चिन्ता मोह धृति स्मृति व्रीडा चपलता हर्ष आवेग जडता गर्व विषाद उत्सुकता निद्रा अपस्मार स्वप्न विबोध अमर्ष अवहित्था उग्रता मति व्याधि उन्माद मरण त्रास और वितर्क ये तेंतिस व्यभिचारिभाव हैं । ये कभी कभी रसस्थिति को भी प्राप्त कहते हैं ।

निर्वेदः

निर्वेदो जगतां गर्हा[3] —

विश्व की गर्हा (तिरस्कार मिश्रित निन्दा) को निर्वेद कहते है, ।

---

१. विशेषादाभिमुख्येन चरणाद् व्यभिचारिणः ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः ।। सा. द. ३.१४६

२. प्रलयान्ति क.

३. स्वावमाननं निर्वेदः संसारे हेयत्वबुद्धिर्वा निर्वेदः । रसतरङ्गिणी पृ० ६५

यथा—

वृन्दारण्यमुपासितञ्च ललिता लज्जोज्झिता यत्कृते ;
नीतिर्दूरतरे धृता च कियती भीतिगुरुणाम्पुरः ।
हित्वा सम्प्रति मां स एव यदभूत्कुब्जानुरागी हरिः,
संसारे सखि दुर्नये नहि जनः कस्यापि कोऽपि ध्रुवम् ॥१३९॥

जिसके लिए मैंने वृन्दावन में विचरण किया, ललित लज्जा का परित्याग किया है, नीति का तिरस्कार किया और गुरुजनों का महान् भय भी छोड़ा, वही हरि अब मुझे छोड़कर कुब्जा-प्रेमी हो रहा है, हे सखि ! इससे पता चलता है कि है इस दुर्नय संसार में कोई व्यक्ति किसी का ध्रुव नहीं है ।

ग्लानि :—

ग्लानिर्निर्बलता मता[1] ॥७९॥

निर्बलता की अनुभूति को ग्लानि कहते हैं ।

यथा—

अतनुतापभरेण मृगीदृशस्तनुरहो तनुतामतनोत्तथा[2] ।
व्रजति सम्प्रति हन्त हरे यथा हुतभुजा नवनीतकगोलकम् ॥१४०॥

जिस प्रकार मक्खन का गोला अग्नि द्वारा (पिघलाकर) क्षीण कर दिया जाता है, उसी प्रकार मृगनयनी के अतिशय ताप ने उसके शरीर को तनु (क्षीण) कर डाला ।

शङ्का—

शङ्काऽनिष्टविचारः स्यात्[3] ।

अनिष्ट विषयक विचारों की उत्पत्ति को शंका कहते हैं ।

---

१. ग्लानिर्निबलता निस्सहता वा । रस० पृ० ६६

२. अतनुस्तथा इति क. ख.

३. उत्कटकोटिकानिष्टप्रतिसन्धानमिष्टहानिविचारो वा शंका । रस० पृ० ६६

यथा—

न्यस्तं वस्त्रवरं जले मृगदृशाम्भग्नं पयोभाजनम् ।
विक्षिप्तानि च भूषणानि नखरैर्वक्षोरुहौ विक्षतौ ।
इत्थं सच्चरितं प्रवक्तुमधुना काचिद्गता मातरम्
व्यग्रेणेति मुरद्विषा द्रुतमहो धत्तं वपुः शैशवम् ।।१४१।।

कोई गोपिका माता यशोदा से यह शिकायत करने पहुँची कि 'तुम्हारे कृष्ण ने मेरे कपड़े गीले कर दिये, गगरी फोड़ दी, आभूषणों को विखेर दिया और उरोजों को नखों से विक्षत कर डाला, यह इसका चरित्र हैं' इससे व्यग्र होकर मुरारि ने तत्काल बाल शरीर धारण कर लिया।

असूया—

असूयाऽन्यसुखे व्यथा।

अन्य के सुख में व्यथा को असूया कहते हैं।

यथा—

रममाणन्तु सपत्न्या प्रियतममभिवीक्ष्य पाणिना सुमुखी ।
उच्चाटयति निशीथे प्रत्यूषः सूचकाश्चटकाः ।।१४२।।

प्रियतम को सौत (सपत्नी) के साथ विहार करते देखकर कोई सुन्दरी अर्ध रात्रि में प्रभात सूचक गौरय्यों को हाथ की ताली से उड़ा रही है।

मद :—

हर्षोत्कर्षोमदः[२]

हर्ष की अधिकता को मद कहते हैं।

यथा —

कादम्बरी रसास्वादघूर्णिताक्षो हलायुधः ।
स्मेरसंशोभिवदनो वीक्षते [वीक्ष्यते ?] रेवतीमुखम् ।।१४३।।

कादम्बरी (शराब) के रसास्वादन के कारण चढे हुए नेत्रों वाले बलराम मुस्कराते हुए रेवती के मुख को देख रहे हैं।

---

१. परोत्कर्षासहिष्णुता परानिष्टचिकीर्षा वा असूया। रस० पृ० ६७

२. हर्षोत्कर्षो मदः। दुःखासंभिन्नसुखानुभव उत्कर्षः। रस. पृ० ६८

श्रम :—

खेद आयासजनितः श्रमः[1] ॥८०॥

आयास जनित खेद को श्रम कहते हैं।

यथा—

केशाः बन्धमिताः पयोधरयुगे मुक्तावली चार्पिता
नीवी संयमनं गता च ललिता भूषा तनौ संधृता।
किञ्चावस्थितिमागतञ्च वसनं सद्यः कुरङ्गीदृशो
विश्वासस्तु तदेव केवलमसौ प्राचुर्यमभ्यस्यति ॥१४४॥

[स्वच्छन्द विहार के अनन्तर] यद्यपि मृगनयनी ने केश बांध लिये, पयोधरों पर मोतियों की माला डाल दी, नीवी में गांठ लगाली, शरीर पर ललित शृंगार भी कर लिया, वस्त्र भी पूर्व की भांति व्यवस्थित हो गये, किन्तु केवल वह विश्वास ही प्राचुर्य का अभ्यास कर रहा है, अर्थात् वह विश्वास और आतमविश्वास के अभाव के हिंडोले पर झूल रही है।

आलस्यम्

कार्येष्वशक्तिरालस्यम्[2] –

कार्यों में अशक्ति (शक्ति के अभाव) को आलस्य कहते हैं।

यथा—

उत्थातुं कृतकामामपि हरिवामाम् अहर्मुखे भूयः।
स्वापयति स्मरदूतो मृदुतरभूतोऽनिलः शीतः ॥१४५॥

प्रभात बेला में उठने की कामना करती हुई हरिवामा (गोपी) को काम का दूत कोमलतर शीतल पवन पुनः सुलाता है।

दैन्यम्

दीनता दुःख संहतिः[3]

दुःख संहति को दीनता कहते हैं।

---

१. आयासप्रभवः पराभवः श्रमः। रस० पृ० ७१

२. उत्थानाद्यक्षमत्वमालस्यम्। रस० पृ० ७१

३. दुरवस्था दुःखातिरेको वा दैन्यम्। अनौज्वल्यमिति केचित्। रस० पृ० ७२

यथा—

रे रे नीरद निर्दयान्वयमणे किन्ध्वानमातन्वता
सम्प्राप्तं भवता निधाय विपुलं कोदण्डमाखण्डलम् ।
किञ्च प्रौढशराः करे तवकृताः कन्दर्पक श्रीमता
विश्लेषाद् वयमेव सम्प्रति हरेः प्राणप्रयाणोत्सुकाः ॥१४६॥

हे निर्दय कुल श्रेष्ठ मेघ, विशाल इन्द्र धनुष लेकर इस प्रकार गरजने से तुम्हें क्या मिला है, और कन्दर्प ने तुम्हारे हाथ में कठोर बाण क्यों दिये हैं, यहां तो इस समय हरि से वियोग के कारण हम ही उत्सुक हैं कि हमारे प्राण प्रयाण कर लें।

चिन्ता—

चित्तवृत्तिस्तु चिन्ता स्यात्

चित्त के व्यापार को चिन्ता कहते हैं।

यथा—

'सञ्चारञ्चाधिकमपिजना' इत्यादिना उक्तैव ।

पृष्ठ सं० ३३ पर श्लोक संख्या २३ देखें ।

मोह—

मोहः सन्तापसञ्चयः ॥८१॥

सन्ताप का सञ्चय मोह कहाता है।

यथा—

श्रीखण्डद्रवसञ्चयेन परितो रे सिञ्च कञ्जाननां
प्रोदञ्चद्[3] धनसारपङ्कनिचयैः किञ्चापि तामञ्चय ।
स्वच्छन्दं विसिनीदलं सनलकं रे धेयमस्यास्तनौ
नित्यं गोपपुरे जनैरिति हरे संश्रूयते केवलम् ॥१४७॥

हरि के गोपपुर में लोगों के मुख से नित्य यही सुनाई पड़ता है कि "अरे इस कमलमुखी के शरीर में सब ओर चन्दनद्रव का लेप करो, नवीन कर्पूरद्रव उस पर लगाओ, और नाल सहित विसिनीदल निर्बाध सब ओर रखो।'

---

१. चिन्ता ध्यानम् । रस० पृ० ७३

२. मोहो वैचित्यम् । रस० पृ० ७४

३. प्रोद्यञ्चद् ख

धृति[1]

धृतिर्मानस सन्तोषः

मानसिक सन्तोष को धैर्य कहते हैं।

यथा—

मूल्याधिकानि[2] वसनानि विभूषणानि
सन्धाय चान्यवनिताः सुखिताः भवन्तु।
अस्माकमम्बुरुहसुन्दरलोचनानां
वृन्दावने हरिविलोकनमेव सौख्यम् ॥१४८॥

अन्य स्त्रियां बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण धारण करके सुखी हों, किन्तु हम कमल नयनियों के लिए तो वृन्दावन में हरि के दर्शन में ही सुख है।

स्मृति—

ज्ञानसंस्कारजा[3] स्मृतिः[4]।

संस्कारजन्यज्ञान को स्मृति कहते हैं।

यथा—

'यदकृत गुरुजनभीता' इत्यादिना उक्तैव ॥

देखिये पृ० ७४ पद्य सं० ११३

यथावा—

'नालापं तनुते न चापि' इत्यादिना उक्तैव ॥

देखिये पृ० ३२ श्लोक २२

व्रीडा—

धार्ष्ट्याऽभावो भवेद् व्रीडा[5]

ढिठाई का अभाव व्रीडा कहलाता है।

---

१. धृतिः सन्तोषो दुःखेप्यदुःखबुद्धिर्वा। रम० पृ० ७६

२. शून्याधिकानि ख

३. संस्कारज इति क

४. संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। रस० पृ० ७४

५. स्वच्छन्दक्रिया संकोचो व्रीडा। रस० पृ० ७७

यथा—

भर्तुर्निमीलितदृशो मुखमायताक्षी'त्यादिना उक्तैव ।

देखिये पृ० ४५ पद्य सं० ४८

चपलता—

चापल्यं कार्यशीघ्रता[1] ॥८२॥

शीघ्रकारिता को चपलता कहते है ।

यथा—

भृङ्गासङ्गिकदम्बकाननतले वंशीधरेणादराद्
रासाय प्रकटीकृतो मुरलिकानादः प्रमोदात्मना ।
रे रे चित्त विचिन्तनानि बहुशः कर्तुं किमुत्कण्ठसे
नायं तात विलम्बनस्य समयश्चञ्चत्कुरङ्गीदृशाम् ॥१४९॥

भृङ्गों से आकुल कदम्ब समूह के नीचे वंशीधर ने प्रसन्न मन से रास के लिए मुरलिका नाद (मुरली बजाना) आरम्भ किया है। हे चित्त इस समय तुम बहुशः चिन्ता में क्यों प्रवृत्त हो रहे हों, चञ्चल मृगनयनियों के लिए यह बिलम्ब करने का समय नहीं है।

हर्षः—

हर्षो मनः प्रसादः स्यात्[2] ।

मन के प्रसाद को हर्ष कहते हैं।

यथा—

जित्वा ह्रदे विषधरं विषमुद्गिरन्तम्,
दृष्टवा हरिम्पुलकितं पुनरागतञ्च ।
हर्षाश्रुबिन्दुनिकरैः व्रजसुन्दरीणां
पत्रावली विलसिता ललिता कपोले ॥१५०॥

विषवमन करते हुए विषधर नाग को जलकुण्ड में मारकर लौटे हुए पुलकित हरि को आया हुआ देखकर ब्रज सुन्दरियों के कपोलों पर रचित, किन्तु हर्ष के आंसुओं से विलीन (फैली हुई) मकरिका सुशोभित हो रही है।

---

१. इतरेतरक्रियाकरणं क्रियायाः शीघ्रता वा चपलता। रस० पृ० ७८

२. चेतः प्रसादो हर्षः रस० पृ० ७८

आवेगः—

आवेगो सम्भ्रमः स्मृतः[1]।

सम्भ्रम अर्थात् हड़बड़ाहट को आवेग कहते हैं।

यथा—

आयातो मुदितः सुबन्धु वलितः प्रान्ते पुरो राघवो
हत्वा रावणमुन्नतं च समरे श्रुत्वेति रम्यं वचः।
काचिद् भ्रंसितमूर्धजा सुवदना नीवीन्दधाना परा
काचित्कज्जलवञ्चितैकनयना द्रष्टुन्तमग्रे गता ॥१५१॥

लक्ष्मण सुग्रीव आदि साथियों के साथ रामचन्द्र प्रबल शत्रु रावण को युद्ध में मार कर प्रसन्न मन नगर के निकट आ गये हैं, इन सुखद वचनों को सुनकर उन्हें आगे से आगे देखने के लिए कोई सुन्दरी बालों को खोले हुए ही, दूसरी नीवी को हाथ से पकड़े हुए और कोई एक आंख में ही काजल लगाये हुए दौड़ पड़ी।

जडता—

जडता काष्ठवच्चेष्टा[2]

काष्ठवत् चेष्टा को जड़ता कहते हैं।

यथा—

'सा वाणी हरिणीदृशो हि' इत्यादिना उक्तैव।

देखिये पृ० ३५ उदाहरण संख्या २७।

गर्वः—

गर्वः सर्वाधिकत्वधीः[3] ॥८३॥

अपने को सर्वाधिक बुद्धिमान् समझना गर्व कहाता है।

यथा—

'सखि नहि यास्यामि सरस्याम्' इत्यादिना उक्तैव।

देखिये पृ० ५४ उदाहरण सं० ६६।

---

१. आकस्मिक इष्टानिष्टोपपातविवर्त्तः सम्भ्रमो वा आवेगः। रस० पृ० ७६

२. सकलव्यवहाराक्षमज्ञानवत्ता जडता। रस० पृ० ८०

३. आत्मनि सर्वाधिकत्व बुद्धिः, सर्वस्मिन्नधर्मबुद्धिर्वा गर्वः। रस० पृ० ८०

विषाद—

विषादश्चित्तवैक्लव्यम्[1]

चित्त की विकलता को विषाद कहते हैं।

यथा—

मुहुरपि रोदिति बालो हरिरति कालोऽपि संजातः।
गमनं कुनय निदानं नहि चेन्मानं स साम्प्रतं भजते ॥१५२॥

बालक बार बार रो रहा है और हरि से रति का समय भी हो गया है। वहां जाना कुनय (बुराई) का मूल है, किन्तु यदि नहीं जाती हूँ, तो वे अब रूठ जाएंगे।

औत्सुक्यम्—

औत्सुक्यमभिलाषिता[2]।

अभिलाषा को उत्सुकता (औत्सुक्य) कहते हैं।

यथा—

रे रे सखे न कुरु दुर्जनवन्निशायां
रावं प्रयाणसमये वरनूपुर त्वम्।
पश्येयमम्बुदनिभं यदि नन्दसूनुं
दास्यामि तेऽपि खलु कान्तिकरोपलौघम् ॥१५३॥

हे मित्रश्रेष्ठ नूपुर! तुम रात्रि में प्रयाण के समय दुर्जन की भांति शोर न करो, यदि नन्दनन्दन घनश्याम मिल जाएंगे (देख सकूंगी) तो तुम्हें भी रत्नों से जड़वा दूंगी।

निद्रा—

चेतो निमीलनं निद्रा[3]

चित्त के निमीलन को निद्रा कहते हैं!

---

१. दृष्टसंशयोऽनिष्टजिज्ञासा वा विषादः। रस० पृ० ८२

२. औत्सुक्यं कालासहिष्णुता सकलेन्द्रियाणामेकदैव क्रियारम्भो वा। रस० पृ० ८३

३. इतरदिन्द्रियमविहाय मनस्त्वचि यदा वर्त्तते तदा निद्रा। रस० पृ० ८६

यथा—

संश्रुत्य पथिकादेषा चरित्रं दनुजद्विषः ।
निद्रितेव तदा राधाऽभवदामुद्रितेक्षणा ॥१५४॥

जब राधा ने पथिक से असुरारि कृष्ण के चरित्र को सूना, तब वह निद्रित की भांति अर्ध निमीलित नेत्रों वाली हो गयी ।

अपस्मार—

महादुःखमपस्मृतिः[1] ॥८४॥

महान् दुःख को कुछ काल के लिए भूल जाने (बेहोस हो जाने) को अपस्मार कहते हैं ।

यथा—

मुहुरपि निपतति बाला मुञ्चति लालाभरं विधुरा ।
निःश्वासं परितनुते जीवति सा ते च केवलं नाम्ना ॥१५५॥

विरह विधुरा बाला (मुग्धा) बारम्बार गिर पड़ती है, उसके मुख से अत्यधिक लाला (फेन का) स्राव होता है, और वह केवल तुम्हारे नाम से निश्श्वास लेती हुई जी रही है ।

स्वप्नम्—

सुप्तस्य विषयासङ्गः स्वप्नः[2]

निद्रा में विषयों की उपलब्धि स्वप्न कहाती है ।

यथा—

दृष्ट्वा तल्पमुपागतं प्रियतमं पृष्ट्वा वचः सादरं
स्पृष्ट्वा पल्लवकल्पपाणियुगलं तस्यामुना पाणिना ।
लीलाकोपविधिं विधातुमतुलं सद्यः समुत्कण्ठितां
नापि द्रागपि मामभीक्ष्य कुटिला भद्राय निद्राभवत् ।१५६।

[स्वप्न में] तल्प पर प्रियतम को आया हुआ देखकर उनसे सादर वचन पूछ अर्थात् सादर आलाप करके, इसी हाथ से उसके पल्लव की भांति कोमल पाणियुगल का स्पर्श करके, लीला पूर्वक मुझे पकड़ने के लिए उत्कण्ठित देखकर कुटिल निद्रा कुछ काल के लिए भी कल्याणमय नहीं रही अर्थात् निद्रा टूट गयी और मेरा स्वप्न बिखर गया ।

---

१. ग्रहावेशोऽपस्मारः । रस० पृ० ८५

२. त्वचमपि विहाय मनः पुरीतति वर्त्तते तदा सुप्तम् । रस० पृ० ८६

विबोध—

बोधश्च जागरः ।

जागरण अर्थात् निद्राभङ्ग को विबोध कहते है ।

यथा—

उत्थापिता विधुमुखी मधुसूदनेन
लीलाविशालनयनादृतसागरेण ।
जृम्भाभरं विधुमियं मुदिता दधाना
सम्मोटयत्यनुपमं वपुरुर्ध्वबाहुः ॥१५७॥

लीलामय विशालनयन समुद्र से समादृत् (अर्थात् सागर के जामाता) मधुसूदन कृष्ण के द्वारा जगायी गयी यह चन्द्र मुखी, जृम्भायुक्त चन्द्र (चन्द्ररूपी मुख) को धारण करते हुए मुदिता होती हुई हाथ उठाकर अनुपम सुन्दर शरीर में सम्मोटन कर रही है, अर्थात् अंगड़ाई ले रही है ।

अमर्ष—

परगर्वक्षयकरी समीहाऽमर्ष उच्यते ॥८५॥

दूसरे के गर्व को चूर करने की इच्छा को अमर्ष कहते हैं ।

यथा—

न चेदुच्चैः क्रुद्धो यदि च मयि वृद्धो हितवचाः
सहायो मे कश्चित्पथि पथविपश्चिद् यदि भवेत् ।
व्रजं तूर्णं हित्वा मधुनगरमित्वा सखि तदा
नतं कुर्यां कुब्जाहृदयमदमब्जापति पुरः ॥१५८॥

हे सखि, हित वचन कहने वाले बृद्ध जन यदि अधिक क्रुद्ध न हों, यदि कोई बुद्धिमान् मार्ग में मेरा सहायक हो जाए, तो मैं तत्काल व्रज को छोड़कर मधुनगर अर्थात् मथुरा जाकर कुब्जा के हृदय के मद को लक्ष्मी पति के सामने ही चूर कर दूँ ।

---

१. इन्द्रियाणां प्रथमप्रकाशो विबोधः ।
निद्राच्छेदोवा विबोधः । रसः पृ० ८७

२. पराहंकारप्रशमोत्कटसमीहाऽमर्षः । रस पृ० ८८

अवहित्था—

अवहित्थान्यवचसस्तिरस्कारः समीरितः[1] ॥

अन्य के वचनों का तिरस्कार अवहित्था कहाता है।

यथा—

कंसो नाम दुराशयो हि जगतां शास्ता नराधीश्वरः
चापल्यं न च कार्यमत्र भवता तस्मादकस्मादपि ।
नन्दस्योक्तमिदं वचो नयमयं संश्रुत्य लीलामृगं
धावन्तं परिपश्यति स्म मधुरास्मेराभिरामो हरिः ॥१५९॥

'संसार का शासक राजा कंस दुष्ट है, इसलिए आपको वहां थोड़ी भी चपलता नहीं करनी चाहिए' नन्द द्वारा कहे गये इन नीति पूर्ण वचनों को सुनकर मधुर मुस्कान से सुन्दर प्रतीत होते हुए कृष्ण दौड़ते हुए मृग को देखने लगे।

उग्रता—

औग्र्यं निष्कृपता ज्ञेया[2]

कृपा हीनता को उग्रता कहते हैं।

यथा—

गोपाङ्गना कथयति ध्रुवजल्पनापि
भूयस्तयैव परितश्चरितं वनस्य ।
इत्थं पुनर्यदि शृणोमि हरे तदानीं
नेष्यामि तात खलु दुःसह बन्धनानि ॥१६३॥

दृढ़ कथन करने वाली गोपाङ्गना (यशोदा) कहती है, कि वृन्दावन में चारों ओर तुम्हारा फिर वही चरित (व्यवहार) यदि मुझे सुनाई दिया, तो हे कृष्ण ! तुम्हें कस कर बांध दूंगी।

मति—

समर्थचिन्तनं मतिः[3] ॥७६॥

समर्थ चिन्तन को मति व्यभिचारि भाव कहते हैं।

---

१. आकारव्यवहारसंगोपनमवहित्थम् । रस० पृ० ८८

२. उग्रता निर्दयता । रस० पृ० ८९

३. यथार्थ ज्ञानं मतिः । रसतरङ्गिणी पृ० ९०

यथा—

धन्या गोकुल सञ्ज्ञिकापि नगरी धन्या नु वृन्दाटवी
धन्या रम्यकलिन्दजोच्चलहरी धन्या दशा शैशवी।
धन्यः बल्लववल्लभापि यदियं ध्येयं सदा योगिनां
खेलन्तं शिशुलीलया मधुरिपुं स्वच्छन्दमालोकते ॥१६१॥

वह गोकुल नगरी धन्य है, वृन्दावन धन्य है, सुन्दर यमुना की उच्च लहरें धन्य हैं, शैशव-काल धन्य है, और गोप बालाएं धन्य हैं, जो योगियों द्वारा समाधि में साक्षात्कार योग्य भगवान विष्णु को बाललीला में खेलते हुए सदा देखते हैं।

उपदेशश्च सन्देश उपालम्भनमेव च।
अनुनयो मतावेव चान्तर्भूतो विशोभते[1] ॥७७॥

उपदेश सन्देश उपालम्भन और अनुनय का अन्तर्भाव मति व्यभिचारिभाव में करना ही उचित है।

उपदेशो यथा—

परिहर खलोपदेशं सपदि निदेशं च वृद्धानाम्।
व्रज सखि मुरहरशयनं कुरु कुरु नयनं तमीक्षितुं चपलम् ॥१६२॥

हे सखि, दुष्टजनों के उपदेश को और वृद्धजनों के आदेशों को, तुरन्त त्याग कर मुरारि के लिए शय्या तैयार करो और उसे देखने के लिए अपने नेत्रों को चपल बनाओ।

सन्देशो यथा—

पान्थ भ्रातर्ललितवचसा श्रीमता मन्निदेशाद्
इत्थं कुब्जाभवननिवसन्माधवः प्रार्थनीयः।
हत्वा कंस सपदि भवता लुण्ठनोत्कण्ठितेन,
त्यक्त्वा तस्य प्रणयवनिताश्चेटिकाः किं गृहीताः ॥१६३॥

हे भाई पथिक, मेरे अनुरोध से आप मधुर वचनों द्वारा कुब्जा के भवन में निवास करते हुए माधव से प्रार्थना करना कि 'आपने कंस को मारकर लूटने के लिए उत्सुक होकर अपनी प्रेमिकाओं को छोड़कर क्या उसकी चेटियों (सेविकाओं) का संग्रह कर लिया है।

---

१. नयविनयाऽनुनयोपदेशोपालम्भा अत्रैवान्तर्भवन्ति। रस० पृ० ९०

उपालम्भनं[1] यथा—

अयि पयोनिधिवंशमणे विधो शृणु मनागिदमेकमना वचः ।
विधिकृतस्य च शीतकरस्य ते समुचिता नहि तापकरप्रथा ।।१६४।।

हे क्षीरसागर के कुलरत्न चन्द्र ! जरा ध्यान देकर इस बात को सुनो 'भगवान् ने तो आपको शीतकिरण बनाया है, अतः आप तापकर हों, यह उचित नहीं हैं ।

अनुनयो यथा—

'बाले काले स्मर नरपते' इत्यादिना एवोक्तः ।

देखिये पृ० ३० उदाहरण सं० १५ ।

व्याधि—

व्याधिः कामज्वरो ज्ञेयः[2]

कामज्वर को व्याधि कहते है ।

यथा—

'रे रे सिञ्च न किञ्चिदम्बुजमुखीम्'

इत्यादिना एवोक्तः एव ।

देखिये पृ० ३५ उदाहरण सं० २८ ।

यथा वा—

श्वसितमुष्णतमं दधतीं भृशं विमलगण्डतलेऽपि च पाण्डुताम् ।
अमरवैद्यसुहृद्य मनागपि व्रजमुपेत्य विलोकय राधिकाम् ।।१६५।।

हे मुरारि ! अत्यन्त उष्ण निःश्वास छोड़ती हुए विमल कपोलों पर अतिशय पाण्डुता को धारण करती हुई राधिका को जरा अमर वैद्य के रूप में व्रज में जाकर देखो ।

उन्माद—

उन्मादश्चेतसो भ्रमः[3] ।

चित्त के भ्रम को उन्माद कहते हैं ।

---

१. उपालम्भो द्विविधः प्रणयात्मा कोपात्मा च ।
कोपात्मामर्ष एवन्तर्भवति । रस. पृ० ६१

२. ज्वरादिविकाराख्यो व्याधिः । रस० पृ० ६२

३. विना विचारमाचार उन्मादः । रस० पृ० ६३

यथा—

तस्या लोचनविभ्रमेण हरिणीचक्षुः समुद्वीक्षितुं
सान्द्रं मण्डलमैन्दवं च वदनभ्रान्त्या पुनश्चुम्बितुम् ।
निश्चित्य ध्वनिरित्यसौ पिक कलं श्रोतुं समुत्कण्ठते
सीतायाः विरहेण किन्न कुरुते वन्यालये राघवः ॥१६६॥

राम उसके (सीता के) नेत्रों के भ्रम में हरिणी के नेत्रों को देखने के लिए मुख के भ्रम में सघन चन्द्रमण्डल का चुम्बन करने के लिए तथा यह उसकी ही आवाज है, यह निश्चय कर कोकिला की ध्वनि को सुनने के लिए उत्कण्ठित होते हैं। वन में सीता के विरह राम क्या नहीं करते ?

मरणम्—

प्राणस्य निर्गमो मृत्युः कविभिः समुदाहृतः[1] ॥८८॥

प्राण निकलने को कविजन मृत्यु कहते हैं।

यथा—

पूतना शिशुलीलयाऽधुना पातिता सुमुखि गोपितात्मना ।
सङ्गतेन भृशयौवनेऽमुना किं विधेयमयि नन्दसूनुना ॥१६७॥

हे सुन्दरि, अपने स्वरूप को छिपाये हुए नन्द सूनु ने शिशु लीला में ही जब पूतना को मार गिराया है, तो जब जवान होगा तो पता नहीं क्या कर डालेगा।

त्रास—

त्रासो मानसविक्षोभः[2]

मन के विक्षोभ को त्रास कहते हैं।

यथा—

शक्रे कोपमुपागते व्रजपुरं हित्वा द्रुतं बल्लवाः
कृष्णस्योद्धृतपर्वतस्य सकलाः पार्श्वं समेत्य स्थिताः ।
दृष्ट्वा तत्र च कुञ्चितं वरकरं सद्यो विशुष्काननाः
पेतुस्तस्य महीयसश्च चरणे 'हा' राविणः साङ्गनाः ॥१६८॥

इन्द्र के कुपित होने पर सभी गोप शीघ्र ही व्रजपुर को छोड़कर कृष्ण द्वारा उठाए हुए पर्वत के पास आकर स्थित हो गये। किन्तु वहां उनके वाम कर को कुंचित देखकर तुरन्त उनका मुख सूखने लगा और अतिशय हाहाकार करते हुए स्त्रियों के साथ उन्होंने उन्हें चारो ओर से घेर लिया।

---

१. प्राणनिष्क्रमणं निधनम्। रस० पृ० ९४.

२. मनो विक्षोभस्त्रासः। रस० पृ० ९५.

वितर्क—

विकल्पस्तर्क उच्यते[1] ।

विविध विकल्प की कल्पनाओं को वितर्क कहते हैं ।

यथा—

सिताम्भोजे तुङ्गो धयति किमु भृङ्गो मधुरसं
किमास्ते पर्यङ्के रजतरचिते पञ्चविशिखः ।
महेशाद्रेः शृङ्गे किमसितभुजङ्गेश्वरफणा
हिमांशौ किम्पङ्कोपमपृथु कलङ्को विजयते ॥१६९॥

चन्द्रमण्डल में कलङ्क देखकर कोई वितर्क कर रहा है, यह श्वेत कमल पर क्या कोई मोटा भौंरा मधु पान कर रहा है ? अथवा चांदी के पर्यंक पर कामदेव बैठा है ? या कैलाश पर्वत के शृङ्ग में कृष्ण भुजङ्ग की फणा दिखाई दे रही है ? या चन्द्रमा में कीचड़ हो गया है, जो कलङ्क के रूप में प्रतीत हो रहा है ।

॥इति भाव निरूपणम्॥

अथानुभावो[2] निरूप्यते—

भावस्य बोधका ये च तेऽनुभावाः समीरिताः ।
शृङ्गारस्यानुभावास्तु स्मितभ्रूक्षेपणादयः ॥८९॥

अग्रिम पंक्तियों में अनुभावों का निरूपण किया जा रहा है ।

जो भावों का बोध कराते हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं । शृङ्गार रस के अनुभाव स्मित भ्रूभङ्ग आदि होते हैं ।

---

१. विचारो वितर्कः । ... वितर्कश्चतुर्विधः विचारात्मा संशयात्माऽनध्यवसायात्मा विप्रतिपत्त्यात्मा चेति । रस० पृ० ६६.

२. ये रसाननुभावयन्ति अनुभवगोचरतां नयन्ति ते अनुभावाः कटाक्षादयः । करणत्वेनानुभावकता । रस० पृ० ३६.

यथा—

स्वैरं स्वैरं प्रणयिविनयं सादरं भाषयन्तं
सङ्केताय स्मरचपलितं माधवं प्रोत्सुकं च ।
दृष्ट्वा पङ्केरुहवरमुखी मौनभाजो मुखस्य
स्मेरेणैव द्रुतमथ तदाऽऽश्वासनं संचकार ॥१७०॥

मन्द मन्द मनोरम प्रेम सहित विनय से पूर्ण आदर पूर्वक बोलते हुए स्मरवश चपल और अत्यन्त उत्सुक माधव को देखकर कमल मुखी ने मौन मुख द्वारा स्मित से ही उस समय आश्वस्त कर दिया ।

हेला लीलाविलासश्च विव्वोकः किलकिञ्चितम् ।
विच्छित्तिर्विभ्रमो मौग्ध्यं विकृतं तपनं मदः ॥९०॥
मोट्टायितं कुट्टमितं ललितं च कुतूहलम् ।
विक्षेपो हसितं केलिस्तथा चकितमित्यपि ॥९१॥
अमी हावास्तु श्रृङ्गारभावजन्याः क्रियाः स्मृताः[1] ।
एते चाप्यनुभावीयलक्षणेनापि लक्षिताः ॥९२॥

हेला लीला विलास विव्वोक किलकिञ्चित् विच्छित्ति विभ्रम मुग्धता विकृत शरीर का ताप (तपन) मद मोट्टायित कुट्टमित ललित कुतूहल विक्षेप हसित केलि चकित ये (१९) श्रृङ्गार भाव से उत्पन्न क्रियाएं हाव[2] कहाती है, इन्हें भी अनुभाव माना जाता है ।

हेला—

हेला भावस्य चात्यर्थबोधिका या क्रिया हि सा[3] ॥९३॥

जो क्रिया भाव का अत्यधिक बोध कराने वाली हो, उसे हेला कहते हैं ।

---

१. लीलाविलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चतम् ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा ।
विहृतं चेति विज्ञेयाः दश हावास्तु योषितः । रस० पृ० ११३.
प्रियसन्निधावभिलाषपरिपूर्त्ति विहृतम् । रस० पृ० १२०

२. नारीणां श्रृङ्गारचेष्टा हावः । रस० पृ० ११३

३. हेलात्यन्तसमालक्ष्यविकारः स्यात् । सा० द० ३.९५

यथा—

स्मितसंशोभितवदना मदनानलतापितं दयितम् ।
प्रदिशति लीलागारं बारम्बारं सुनयनविक्षेपैः ॥१७१॥

स्मित से सुशोभित मुखवाली नायिका कामाग्नि से तप्त प्रिय को बारम्बार नयन विक्षेप के द्वारा लीलागृह की ओर भेज रही है।

लीला—

लीलाविभूषणै र्वाग्भिः[1] प्रेयसोऽनुकृतिः स्मृता[2] ॥

अलंकृत वाणी से प्रिय की अनुकृति (नकल) लीला कहाती है।

यथा—

गता वल्लीशालामुरसिवनमालां विदधती
शिखण्डानामालीमपि च कचपाली परिसरे ।
करे धृत्वा वंशीवरमतुलहंसीगतिरियम्
मुदा राधा कृष्णं विपिनरतितृष्णं मृगयति ॥१७२॥

लता गृह में गयी हुई हंसगमना यह राधा वक्षस्थल पर वनमाला को शिर पर मयूर पिच्छों को और हाथों में सुन्दर वंशी को धारण किये हुए प्रसन्न मन से वन विहार के लिए उत्सुक कृष्ण को खोज रही है।

विलास—

विलासः प्रेयसश्चेष्टा भूषादेरभिनन्दनम्[3] ॥६४॥

प्रिय की चेष्टा और वेषभूषा आदि का अभिनन्दन विलास कहाता है।

यथा—

प्राप्तस्वनस्य कर्णे निहितसुवर्णे हरिवंशस्य ।
व्रजपुरिवल्लववनिता मुहुरपि मुदिताभिनन्दनं कुरुते ॥१७३॥

स्वर्ण मण्डित कानों में कृष्ण की बजती हुई बांसुरी का व्रज की गोपबाला बारम्बार प्रसन्न होकर अभिनन्दन करती है।

---

१. वाचा क ख

२. प्रियभूषणवचनाद्यनुकृतिर्लीला । रस० पृ० ११४

३. गमननयनवदनभ्रूप्रभृतीनां यः कश्चिदुत्पद्यते विशेषः स विलासः । रस० पृ० ११५

विव्वोक

विव्वोकश्चाभिमानेनाभीष्टस्यापि निरादरः[1] ।

अभिमान पूर्वक अभीष्ट का भी निरादर करना विव्वोक कहाता है ।

यथा—

कापि निधाय चिरादभिमानं
शयनतले नितरामनिदानम् ।
हरिकरनिहितललितवनमालाम्
अपि नहि पश्यति सकृदपि बाला ॥१७४॥

कोई व्रजबाला अकारण ही शय्या पर अभिमानवती होकर हरि के हाथ में विद्यमान वनमाला को एक बार भी नहीं देखती ।

किलकिञ्चतम्—

स्मितक्रोधभयादीनां सांकर्यं प्रियसन्निधौ ।
किलकिञ्चितमित्येवं कविना समुदाहृतम्[2] ॥६५॥

प्रिय के निकट स्मित क्रोध भय आदि के सांकर्य को कविजन किलकिञ्चित् कहते है ।

यथा—

आनन्दं भजते श्रमं वितनुते त्रासाय चोत्कण्ठते[3]
क्रोधं चाप्ययते भयेन विपिनोपान्तं समुद्वीक्षते ।
हास्यं संकुरुते त्रपामपि समाधत्ते रुदन्ती मृषा
प्रेमान्धा हरिणा सहैवमधुना राधा समाक्रीडति ॥१७५॥

इस समय प्रेमान्ध राधा हरि के साथ इस प्रकार क्रीडा कर रही है कि कभी आनन्दित होती है, कभी श्रम का प्रदर्शन करती है, कभी त्रस्त और उत्कण्ठित होती है, कभी क्रुद्ध होती है, और कभी डरती हुई सी वन की ओर देखती है, कभी हंसती है, कभी लज्जित होती है, और कभी असत्य (नकली) रुदन करती है ।

---

१. गर्वाभिमानसम्भूतो विकारोऽनादरात्मा विव्वोकः । रस० पृ० ११६

२. श्रमाभिलाषगर्वस्मितहर्षभयक्रुधां संकरः किलकिञ्चितम् । रस पृ० ११६

३. चोत्कण्ठिता ख

विच्छित्ति—

विच्छित्ती रचनाल्पापि भूषणस्यातिदीपिका[1] ।।६६।।

भूषा को दीप्त करने वाली अल्प रचना भी **विच्छित्ति** कहाती है।

यथा—

तनौ रम्यं वासो न च मृदुलहासोऽपि वदने
न वा कण्ठे माला यदपि न विशाला मकरिका।
ललाटेऽयं बिन्दुस्तदपि तव सिन्दूररचितो
विधत्ते लावण्यं चरितमथ धन्यं रतिपतेः ।।१७६।।

तुम्हारे शरीर पर न तो सुन्दर वस्त्र है और न मुखपर मधुर मुस्कान। न कण्ठ में माला है और न अंगों पर पत्रभङ्गमकरिका। फिर भी ललाट पर सिन्दूर से रचित यह बिन्दु (बिन्दी) तुम्हारे लावण्य में अभिवृद्धि कर रहा है, अवश्य ही रतिपति कामदेव का चरित धन्य है।

विभ्रम—

हर्षाद् विरुद्ध विन्यासो भूषणानाञ्च विभ्रमः[2] ।

हर्षातिरेक से भूषणों का विपरीत विन्यास **विभ्रम** कहाता है।

यथा—

श्रुत्वा कान्तसमागमं निजपुरोपान्ते जनस्याननात्
तन्वन्त्या वरभूषणानि च मुदा सद्यः कुरङ्गीदृशा।
दीर्घालक्तकरेखयाऽञ्चितमथो नेत्रम्पदं कज्जलैः
चूडारत्नमुरःस्थले परिधृतं हारस्तु जूटोपरि ।।१७७।।

लोगों के मुख से प्रिय का नगर के निकट आगमन सुनकर मृगनयनी ने तत्काल प्रमुदित हो आभूषण धारण करती हुई आंखों पर लम्बी अलक्त रेखा लगा ली और पैरों पर काजल। शिर के आभूषण को वक्षस्थल पर धारण कर लिया और हार को केशपाश के ऊपर बांध लिया।

---

१. कतिपयभूषाविन्यासो विच्छत्तिः। रस० पृ० ११५

२. वागङ्गभूषणानां स्थानविपर्यासो विभ्रमः। रस० पृ० ११६

मौग्ध्यम्

मौग्ध्यमज्ञातवत् प्रश्नो ज्ञातस्यापि च वस्तु नः[1] ॥९७॥

ज्ञात वस्तु के सम्बन्ध में भी अज्ञात के समान प्रश्न करना **मुग्धता** कहाती है।

यथा—

कस्येदं कुसुमं सुवासवलितं लब्धं कथं श्रीमता
कुत्रासीद् बहुलं किमस्य च फलम्पाणौ सदा धारणे।
इत्थं नन्दनिकेतनस्य सविधे मुग्धेव गोपाङ्गना
दृष्टं पद्ममदृष्टवच्च परितः सम्पृच्छति श्रीपतिम् ॥१७९॥

सुगन्ध से भरा यह पुष्प किसका है ? आपने इसे कहां और कैसे प्राप्त किया ? इसे सदा हाथ में धारण करने से क्या लाभ होता है ? नन्द के घर के पास कोई गोपाङ्गना पूर्व से ज्ञात कमल के सम्बन्ध में अज्ञात के समान श्रीपति (कृष्ण) से बार बार पूछती है।

विकृतम्—

वक्तव्यसमये मौनं त्रपया विकृतं स्मृतम्।

बोलने के अवसर पर लज्जावश मौन हो जाना **विकृत** कहाता है।

यथा—

प्रार्थितायाः सरोजाक्ष्याः सङ्केताय मुरद्विषा।
वचनानि तिरस्कृत्य स्वीकृतं स्वेदबिन्दुना ॥१८०॥

मुरारि ने संकेत स्थल पर जाने हेतु प्रार्थित कमलनयनी के वचनों की उपेक्षा कर स्वेदविन्दुओं से सूचित को स्वीकार किया।

तपनम्—

तपनं प्रियविश्लेषे सन्तापो मन्मथस्य यः[2] ॥९८॥

प्रिय से वियोग की स्थिति में मन्मथ के सन्ताप को **तपन** कहते हैं।

---

१. अज्ञानादिव या पृच्छा प्रतीतस्यापि वस्तुनः।
वल्लभस्य पुरः प्रोक्तं मौग्ध्यं तत्तत्त्ववेदिभिः। सा. द. ३ १०७

२. तपनं प्रियविच्छेदे स्मरावेगोत्थचेष्टितम्। सा. द. ३.१०६

यथा—

पिकानामुद्रीर्णं कलमतुलकर्णज्वरभरमित्यादिना एवोक्तम् ।

देखिये पृ० २८ उदाहरण संख्या ११ ।

मद—

स्नेहसौन्दर्यसंजातोऽहंकारो मद उच्यते ।

सौन्दर्य एवं प्रिय के स्नेह से उत्पन्न अहंकार को **मद** कहते हैं ।

यथा—

'मा कृथाः सखि वृथा परिश्रममि'त्यादिना एवोक्तः ।

देखिये पृ० ५४ उदाहरण संख्या ६८ ।

मोट्टायितम्—

अङ्गुलीस्फोटनं[1] चैव कर्णकण्डूयनादिकम् ।
दयितस्य कथारम्भे तन्मोट्टायितमुच्यते[2] ।।९९।।

प्रियविषयक चर्चा आरम्भ होने पर अंगुली फोड़ना कान खुजलाना आदि क्रियाएं करने को **मोट्टायित** कहते हैं ।

यथा—

सद्यः सखीजनानीतदयितस्य कथामृतम् ।
कर्णे कण्डूयनव्याजादङ्गुल्या सुमुखी ददौ ।।१८१।।

सखीजनों द्वारा लाए हुए प्रिय के कथारूपी अमृत को सुनकर सुन्दरी ने खुजलाने के बहाने तत्काल ही कान में अंगुली लगाली ।

कुट्टमितम्—

स्पर्शने च स्तनादीनां हर्षे सत्यपि यन्मुहुः ।
उक्तं कुट्टमितं नेति शिरोहस्तादिकम्पनम् ।।१००।।

उरोज आदि का प्रिय द्वारा स्पर्श करने पर हर्ष होने पर भी अनेक बार न न कहना एवं निषेध सूचनार्थ शिर हाथ आदि हिलाना **कुट्टमित** कहाता है ।

---

१. स्फोटना च इति ख

२. वार्तावैमुख्ये सति निभृतभूयोदर्शनस्पृहा मोट्टायितम् । रस० पृ० ११७

३. सुखे दुःखचेष्टा कुट्टमितम् । रस० पृ० ११८

४. केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि संभ्रमात् ।
आहुः कुट्टमितं नाम शिरःकरविधूननम् ।।सा. द. ३.१०३

यथा—

प्रिये करेण स्पृशति स्तनद्वयं
नितान्तमोदाभियुतापि तत्क्षणम् ।
नकारसत्कारभरं वितन्वती
शिरो धुनोतीन्दुमुखी मुहुर्मुहुः ॥१८२॥

प्रियद्वारा हाथों से दोनों स्तनों का स्पर्श करने पर अत्यन्त मुदित होकर भी सत्कार पूर्वक न न करती हुई सुमुखी बारम्बार शिर हिला रही है ।

ललितम्—

अङ्गादीनां च लालित्यं ललितं कविभिः स्मृतम्[1] ॥१०१॥

अंग आदि के लालित्य को कविजन ललित कहते हैं ।

यथा—

स्मेरं संकलयन्मुहुश्च नटयन्गण्डस्थले कुण्डले
कान्त्या स्वस्य विडम्बयँश्च जलदं किञ्चित्समालोकयन् ।
गोपालैर्विलसन् सरोरुहदृशां चेतांसि सम्मोदयन्
सानन्दं हरिरेष पश्य विपिनादायाति नन्दालयम् ॥१८३॥

देखो ये कृष्ण मुस्कान विखेरते हुए गण्डस्थल (कपोलों) पर कुण्डल नचाते हूए, अपनी कान्ति से मेघ की विडम्बना करते हूए, कुछ देखते हुए, गोपालों के साथ विलास करते हूए और कमलनयनियों के चित्त को आनन्दित करते हुए वन से आनन्दपूर्वक नन्दभवन को आ रहे हैं ।

कुतूहलम्—

रम्यार्थस्यावलोकाय चापल्यं स्यात्कुतूहलम्[2] ।

रम्य वस्तु के दर्शन हेतु चपलता को कुतूहल कहते हैं ।

---

१. सकलाङ्गसमीचीनविन्यासो ललितम् । रस. ११६

२. रम्यवस्तुसमालोके लोलता स्यात्कुतुहलम् । सा. द. ३.१०९

यथा—

अजानन्त्यः श्रस्तामपि पथि समस्ताः प्रमुदिताः
लसन्नीवीं मालामपि भुवि विशालान्निपतिताम् ।
सभग्नं कुर्वन्तं धनुरथ लसन्तं क्षितिभुजा
ययुर्द्रष्टुं श्यामं जनकपुरि रामं युवतयः ॥१८४॥

अत्यन्त हर्षित अत एव मार्ग में स्रस्ता नीवी को और भूमि पर गिर गयी विशाल माला को भी न जानती हुई अर्थात् हर्षातिरेक में सब कुछ भूली हुई जनक पुरी की समस्त युवतियां राजा जनक से विलसित धनुष को भङ्ग करते हुए घनश्याम राम को देखने के लिए चल पड़ीं ।

विक्षेप—

भूषादेरर्धनिर्माणं विक्षेपः समुदीरितः[1] ॥१०२॥

भूषा आदि का आधा ही निर्माण करना विक्षेप कहाता है ।

यथा—

अर्धाञ्जनं नयनयोर्दधती च कर्णे
ताटङ्कमेकमथ चार्धपदे त्वलक्तम् ।
अर्धाक्षराणि वचनानि निगद्य वामा
कामातुरा मधुरिपुम्प्रसमीक्षतेऽसौ ॥१८५॥

आंखों में आधा ही अंजन लगाये, एक कान में ताटंक पहने और पैर में आधा ही आलता लगाए हुए कामातुरा सुन्दरी अर्धाक्षर वचन बोलकर मधुरिपु को देख रही है ।

हसितम्—

हसितं तु वृथा हासः प्रियस्यालोकनेन यः[2] ।

प्रिय के दर्शन से ही जो व्यर्थ हास उत्पन्न हो उसे हास कहते हैं ।

यथा—

स्मितं ते स्वयमुद्भूतम्पर्याप्तं दन्तवाससि ।
तिरस्करोति पुष्पाणि प्रवालस्थानि वल्लभे ॥१८६॥

हे प्रिये, तुम्हारे होंठों पर उत्पन्न पर्याप्त स्मित पल्लवों पर स्थित पुष्पों को तिरस्कृत करता है ।

---

१. भूषाणामर्धरचना मिथ्या विष्वगवेक्षणम् ।
रहस्याख्यानमीषच्च विक्षेपो दयितान्तिके ॥ सा. द. ३.१०८

२. हसितं तु वृथा हासो यौवनोद्भेदसंभवः ॥ सा. द. ३. १०९

केलि :—

प्रादुर्भावै[1]स्तिरोभावैः क्रीडितं केलिरुच्यते[2] ॥१०३॥

प्रादुर्भाव और तिरोभाव द्वारा क्रीडा को केलि कहते हैं ।

यथा—

दृष्ट्वा तु मानबलितान्दयितां निकुञ्जे
कृष्णः क्षणञ्च निभृतेन तिरोबभूव ।
तामश्रुपूरितदृशम्भृशमालपन्तीं
मत्वा विहस्य सहसा पुनराजगाम ॥१८७॥

मानवलित प्रिया को निकुञ्ज में देखकर कृष्ण कुछ काल के लिए चुपचाप छिप गये, किन्तु थोड़ी ही देर में उसे अश्रुप्रवाहपूर्वक विलाप करते हुए जानकर हंसते हुए सहसा फिर प्रगट हो गये ।

चकितम् :—

किञ्चिद् भ्रमेण या भीतिः प्रियाग्रे चकितं हि तत्[3] ॥१०३[1]॥

प्रिय के समक्ष कुछ भ्रम से डर जाने को चकित कहते हैं ।

यथा

वृन्दारण्यविशालभूतलजुषा कृष्णेन कंसद्विषा
सार्द्धं कापि सरोजसुन्दरमुखी तत्र भ्रमन्ती चिरात् ।
निर्मोकं विपुलं समीक्ष्य चरणस्पृष्टम्भुजङ्गभ्रमात्
सद्यस्तं प्रियमालिलिङ्ग चकिता चीत्कारमातन्वती ॥१८८॥

विशाल वृन्दावन की भूमि में कंसारि कृष्ण के साथ भ्रमण करती हुई कोई कमलमुखी वहां बड़े से केचुल को चरण में छुआ हुआ देखकर सर्प के भ्रम से डर से (चकित होकर) चीत्कार करती हुई प्रिय से लिपट गयी ।

[इति वेणीदत्तकृते रसकौस्तुभेऽनुभावनिरूपणम्]

---

१. प्रादुर्भूतैः क

२. विहारे सह कान्तेन क्रीडितं केलिरुच्यते । सा.द. ३.११०

३. कुतोऽपि दयितस्याग्रे चकितं भयसम्भ्रमः ॥ सा. द. ३. ११०

अथवीर लक्षणम्

उत्साहः स्थायिभावो यः स्वर्णाभः शक्रदैवतः ।
युद्धदानदयाभेदात् त्रिविधो वीर उच्यते ॥१०४॥

वीररस वर्णन

उत्साह स्थायिभाव का परिपाक **वीररस** कहाता है। यह स्वर्णिम कान्तिवाला है, तथा इन्द्र इसका देवता है। इस के तीन भेद हैं—युद्धवीर दानवीर और दयावीर।

युद्ध वीरो यथा—

येनोच्चैः भुजसञ्चयेन शिखरी शम्भोस्समुत्पाटितो
जेता यस्य तनूज एव समरे गीर्वाणगोष्ठीपतेः ।
सोऽयं सम्प्रति रावणः सह गणैरायाति युद्धाशयः
संश्रुत्येति विभीषणस्य लपितं रामो जगाद[1] स्मितम् ॥१८९॥

जिसने अपनी भुजाओं से शम्भु के निवासभूत कैलाश पर्वत को उठा लिया था, जिसके पुत्र ने ही देवराज इन्द्र को युद्ध में जीत लिया था, वह रावण इस समय युद्ध की कामना से गणों सहित आ रहा है, बिभीषण के इस कथन को सुनकर राम मुस्कराते हुए बोले।

यथा वा—

नीता येन च दुर्नयेन विपिनात्सीता विनीता बलात्
शक्त्या सङ्गरसीम्नि चाग्निनिभया सौमित्रिरेवार्दितः ।
दृष्ट्वा तं सगणं बलोन्नतभुजग्रामोदितं रावणं
स्वैरं स्मेरविशोभितो रघुपतिः कोदण्डमालोकते ॥१९०॥

अथवा

जिस दुष्ट ने वन से सीता का बलात् हरण किया था, जिसने युद्ध भूमि में अग्निसदृश शक्ति के द्वारा लक्ष्मण को आहत कर दिया था, उस रावण को दलबल सहित युद्धार्थ भुजाएं उठाए हुए देखकर बिना चिन्तित हुए (शान्त मुद्रा में) मुस्कान से सुशोभित राम अपना धनुष् देख रहे हैं।

---

१. जगाम क

दानवीरो यथा—

तातेनापि निवारितोऽपि गुरुणा शुक्रेण कोपात्मना
वृद्धेनाप्यपरेण यद्यपि दनोः पुत्रेण वैरोचनिः ।
मूर्त्तिं ह्रस्वतरां विधाय वसुधां स्वल्पाञ्च संजल्पिने
देहीति द्विजरूपिणे भगवते लोकत्रयं सन्ददौ ॥१९१॥

दानवीर—पिता द्वारा, क्रोधी स्वभाव वाले गुरु शुक्राचार्य द्वारा तथा अन्य वृद्धजनों द्वारा मना करने पर भी विरोचन के पुत्र दानव बलिने वामनरूप धारण कर 'थोड़ी भूमि मुझे दे दो' ऐसा कहते हुए ब्राह्मण वेशधारी भगवान् को तीनों लोक दे डाले ।

यथावा—

मह्यं वर्म्म सुमर्म्मपालनमिदं राजन् प्रदेहि द्विज
व्याजेनेति च भाषिणे रणविधौ जिष्णोर्जयाकांक्षिणे ।
तातेनाम्बरनायकेन यदपि प्रागेव संवारितो—
देवाय त्रिदशेश्वराय मुदितः कर्णो ददौ तद् द्रुतम् ॥१९२॥

अथवा

युद्ध भूमि में अर्जुन के विजय की कामना करने वाले ब्राह्मणवेश धारण कर 'हे राजन् यह मर्मरक्षक कवच मुझे दे दो' इन शब्दों में याचना करने वाले देवराज इन्द्र को अम्बरनायक पिता भगवान् सूर्य के मना करने पर भी कर्ण ने अपना कवच प्रसन्नता पूर्वक तुरन्त दे डाला ।

दयावीरो यथा—

हरे शौरे विष्णो दनुजमदजिष्णो मधुरिपो
सहायः श्रीबन्धो निखिलगुणसिन्धो भव विभो ।
वदेद्यावद्दन्तावलपतिरिदन्तावदचिरं
कृतो मुक्तो ग्राहात्स खलु परिणाहाद् भगवता ॥१९३॥

दयावीर—

'हे सबके सहायक असुरों का मद हरने वाले शूरसेन के वंशज (पौत्र) मधुरिपु सकल गुणों के आगार सर्वव्यापक श्रीपति भगवन्...' इत्यादि प्रार्थना वचनों को जब तक गजपति कहता है, तभी भगवान् ने उसे विशाल ग्राह से छुड़ा दिया ।

यथावा—

कृष्टा दुःशासनेनाखिलगुरुसविधे हन्त वासोपकर्षात्
मज्जामि प्रौढलज्जाविषमजलनिधौ त्राहि मां दीनबन्धो ।
यावत् व्योमाभिलग्नं[1] लपितमिति भवेत्तत्र पञ्चालजायाः
नीतं शक्रानुजेन द्रुतमथ वसनं दीर्घतां तावदेव ॥१६४॥

अथवा—

समस्त गुरुजनों के समक्ष अपमान पूर्वक वस्त्र खींचे जाने 'अतिशय लज्जा के सागर में मैं डूब रही हूँ, हे दीन बन्धु मुझे बचाओ' इत्यादि द्रोपदी के वचन आकाश को छूते हैं, तभी उपेन्द्र भगवान् कृष्ण ने उसके वस्त्रों को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

अथ करुणम्—

शोकः स्थायी कपोताभः करुणो यमदैवतः ।

शोक स्थायिभाव के परिपाक के **करुणरस** कहते है, यह कपोत वर्ण है, तथा इसका देवता यम है।

यथा—

शक्त्या त्वं निहतो विहाय चलितो मामत्र तातान्तिकम्
युक्तं तद्विनिवेदयामि किमपि भ्रातः क्षणं श्रूयताम् ।
आनीता दशकन्धरेण दयिता रामस्य सीता वनाद्—
उद्भूता विमले दिवाकरकुले वत्सेति कुत्साधिका[2] ॥१६५॥

हे वत्स लक्ष्मण ! तुम शक्ति के प्रहार से आहत होकर यहां मुझे छोड़कर पिताजी के पास चल पड़े हो, ठीक ही है, मेरा तुम से कुछ निवेदन है, हे भाई जरा सुनो ! निर्मल सूर्यवंश में उत्पन्न सीता को दशकन्धर रावण हर ले गया है, इससे राम को बहुत ग्लानि है।

यथावा—

अस्त्येव स्तुत एव रावणगणो लङ्कापि निश्शंकिता
रक्षोरक्षकसञ्चयेन बलिता सीताऽपि हा तादृशी ।
किञ्चान्यद् विमले कुलेऽपि महती कुत्सापि वत्सोदिता
सौमित्रे वद कुत्र सम्प्रति रणाद् गन्तुं समुत्कण्ठसे ॥१६६॥

हे वत्स लक्ष्मण, रावण के गणों की आज भी स्तुति (प्रशंसा) होती है, राक्षस रक्षकों से आवेष्टित लंका अब भी निश्शंक है, और हाय सीता की अभी वही हालत है,

---

१. व्योमाभिलग्नं क   २. कुत्सारिका ख

अधिक क्या कहें, इस निर्मल कुल में भी यह एक बड़ा दोष उत्पन्न हो गया है, इस स्थिति में हे लक्ष्मण तुम युद्ध भूमि छोड़कर कहां जा रहे हो।

यथावा—

सौन्दर्यैरभिसेवितञ्च बलिभिः कर्णादिभिर्मण्डितम्
श्रीखण्डद्रवसंचयैरिव धराधूलीभिराभूषितम् ।
किञ्चैवार्थिभि[१]रावृतञ्च पतितो गोमायुभिः सङ्गरे
त्वामद्यापि न पुत्र मुञ्चति नृपश्रीरत्र दुर्योधन ॥१९७॥

हे दुर्योधन, तुम सर्वतः सौन्दर्य से युक्त, बली कर्ण आदि से मण्डित एवं चन्दनद्रव के सदृश भूमि की धूलि समूह से विभूषित, गोमायुरूपी याचकों से सर्वतः आवृत हो, इस प्रकार तुम्हें अब भी राजशोभा नहीं छोड़ती।

अथाद्भुतरसवर्णनम्—

कन्दर्पदैवतः पीतः स्थायी च विस्मयोऽद्भुतः ।

विस्मय स्थायी भाव के परिपाक को अद्भुत रस कहते हैं। कन्दर्प इसका देवता है, तथा इसका वर्ण पीत है।

यथा—

उद्यत्ताण्डवचञ्चलाजिनपटप्रोद्भूतवातव्रज
व्याधूता समलोचनानलवरज्वालाकुलव्याचितम् ।
कैलासं गिरिशो निरीक्ष्य[२] सकलव्यालोपशंकाकुलः
सार्द्धं पौरजनैरसिञ्चदनिशम्मन्दाकिनीवारिभिः ॥१९८॥

गिरिश शिव, ताण्डव के समय उछलते हुए चञ्चल चर्मरूपी वस्त्र से उठते हुए वात समूह से प्रदीप्त, तृतीय नेत्र की ज्वालाओं से आवृत कैलाश को देखकर सब कुछ नष्ट हो जाने की शंका से आकुल होकर पौरजनों के साथ उसे मन्दाकिनी के जल से दिन रात सींचने लगे।

---

१. किञ्चेवार्थिभि क

२. सकलं क

यथावा—

प्रौढक्रोधाग्नि[3]लीनस्त्वरितमुपगतः प्लावितुङ्गोपपल्लीं
कुर्वद्भिर्ध्वानमुच्चैः सह निखिलघनैर्वारिधारां किरद्भिः ।
अंगुल्यग्रेण शैलं तृणमिव विपुलं लीलया सन्दधानं
दृष्ट्वा गोपालवेशं हरिमतिशयितं मन्यते चित्रमिन्द्रः ।।१९९।।

अथवा

अत्यधिक क्रोधाग्नि में लीन, तुरन्त पास पहुंच कर अतिशय गर्जन के साथ जलधारा की वर्षा करते हुए बादलों द्वारा पल्लवित ग्राम से युक्त उच्च विशाल पर्वत को तृण के समान अंगुलि के अग्रभाग से लीला पूर्वक धारण करते हुए गोपाल वेशधारी विष्णु को देखकर इन्द्र अत्यधिक विस्मित हो गये ।

अथ हास्यरसवर्णनम्—

हास्यो हास[4]स्थायिभावः शुक्लः प्रमथदैवतः ।।१०६।।

हास्यरस वर्णन

हासस्थायिभाव का परिपाक हास्यरस कहाता है । इसका शुक्ल वर्ण है और प्रथम इसका देवता है ।

प्रमथ

यथा—

भृशं दृष्ट्वा ताराः नभसि पृथुहाराय रुचिराः
क्षणं पाणावेताः नय मम समस्ताश्च जननि ।
प्रवल्गन्तं सद्यो द्रुतमिति विधायातिरुदितं
यशोदा पश्यन्ती व्रजपुरिवसन्ती विहसति ।।२००।।

आकाश में सुन्दर बड़े बड़े तारों को देखकर हे मां ! इन सबको हार के लिए मेरे हाथ में ला दो, ऐसा कह कर तत्काल ही अतिशय रोने में प्रवृत्त हरि को देखते हुए ब्रजपुर निवासिनी यशोदा हंस रही है ।

---

३. क्रोधाब्धि क ४. हास्य क.

यथावा--

केनापि मन्दनयनेन जरार्दितेन
चूर्णभ्रमेण खलु काकमलं गृहीतम् ।
दृष्ट्वेति बालनिचयः परितस्तदानी
मुच्चैर्जहास परिहाभरं प्रकुर्वन् ॥२०१॥

अथवा—

वृद्धावस्था से पीड़ित मन्ददृष्टि वाले किसी व्यक्ति ने चूर्ण के भ्रम से कौए के मल को ग्रहण कर लिया, इसे देखकर चारों ओर से बालवर्ग परिहास करता हुए जोरों से हंस पड़ा ।

अथ भयानकरसवर्णनम्—

कालाधिदैवतः कृष्णो भीतिः स्थायी भयानकः[1] ।

भय स्थायी भाव का परिपाक भयानकरस कहाता है, काल इसका देवता है, और इसका वर्ण कृष्ण है ।

यथा—

काली व्यालीश्वराली ग्रथितनरशिरोमालिनीं व्यात्तवक्त्रां
दंष्ट्राजालप्रविष्टा सुरविपुलपलां कालिकां घोररूपाम् ।
दृष्ट्वाऽनिष्टाभिशङ्काभरवलितहृदो गन्तुमुत्का दिगन्त-
न्दैतेयाः केऽपि शुम्भो रणभुवि सविधे मन्वते स्वस्य मृत्युम् ।

काली महासर्पिणी से ग्रथित नरमुण्ड की माला पहने हुए, खुले हुए मुख वाली, दांतों के बीच में प्रविष्ट (पहुँचे हुए) असुरसमूह के रक्त से युक्त, घोर रूप वाली कालिका को देख कर अनिष्ट की आशंकाओं से युक्त होकर अन्यत्र जाने को उत्सुक दैत्यगण शम्भु के साथ युद्ध के समय अपनी मृत्यु को ही उपस्थित मान रहे थे ॥२०२॥

---

१. भयस्य परिपोषः सर्वेन्द्रियविक्षोभो वा भयानकः । रस० पृ० १३७

यथावा--

आयान्तं कुम्भकर्णं रणभुविकुपितं छिन्ननासाग्रकर्णं
गर्जन्तं व्यात्तवक्त्रोदितविषमरदञ्चालयन्तं धरित्रीम् ।
दृष्ट्वा सद्यः समन्तात्कति कति कपयो घोरचीत्कारनादं
कुर्वन्तो वेगवन्तो भयबलितहृदो रामचन्द्रं प्रजग्मुः ॥२०३॥

अथवा—

कटे हुए नाक कान वाले एवं कुपित कुम्भकर्ण को युद्धभूमि में आते हुए, गर्जन करते हुए, मुख खोलने से बाहर निकले हुए दांतों वाले, पृथ्वी को कंपाते हुए देख कर उसके चारों ओर अनेक वानर घोर चीत्कार करते हुए भय से विह्वल होकर वेग पूर्वक रामचन्द्र के पास गये ।

अथ बीभत्सरसवर्णनम्

वर्णो यस्य महानीलो महाकालश्च दैवतः ॥१०७॥
जुगुप्सास्थायिभावो यो बीभत्सः स उदीरितः ।

बीभत्स रस का वर्णन

जिसका वर्ण महानील है, महाकाल जिसका देवता है, तथा जुगुप्सा स्वायी भाव है, उसे बीभत्स रस कहते है।

यथा—

देव्याः पाञ्चालजायाः सकलगुरुतटे केशपाशापकर्षात्[1]
संजातप्रौढकोपावलिबलितहृदं वीरधर्मानुरक्तम् ।
दृष्ट्वा दुःशासनस्य क्षतजरसभरं भीमसेनं पिबन्तम्
चक्रुः सर्वे सकम्पाः सपदि युधि भटास्तत्र नेत्रापिधानम्[2] ॥

यथा—

समस्त गुरुजनों के समक्ष देवी पाञ्चाली (द्रौपदी) के केश और वस्त्रों के आकर्षण के दर्शन से उत्पन्न अतिशय क्रोधावलि से युक्त हृदय वाले अपमान के प्रतिशोधरूप वीरधर्म के लिए अनुरक्त भीमसेन को युद्ध भूमि में दुःशासन के वक्षःस्थल से निकलने वाले रक्त का पान करते हुए देखकर सभी वीर कांप गये और उन्होने तुरन्त अपने नेत्रों को बन्द कर लिया ॥२०४॥

---

१. केशवासोऽयं क. २. नेत्राणिनीचैः क.

यथा वा—

जिष्णोर्नाराचधाराहतपृथुवपुषां भूभुजां भूमिभाजां
लब्ध्वा क्रव्यं च नव्यं रणभुवि बहुलं मत्तवेतालबालाः ।
वृद्धाः गृद्धाश्च शालावृकगणबलितास्तत्र मज्जां लिहन्तः
स्वच्छन्दं मोदमाना दिशि दिशि नितरां बाहुवीर्यं स्तुवन्ति ।।

अर्जुन के वाणों से आहत होकर विशाल शरीर वाले तथा भूमि पर पड़े हुए राजाओं के ताजे मांस को बहुत अधिक मात्रा में युद्ध भूमि में पाकर मत्त वेताल पुत्र, वृद्धगृद्ध एवं सियार एकत्र होकर मज्जा का आस्वादन करते हुए और स्वच्छन्दता पूर्वक आनन्दित होते हुए सभी दिशाओं में निरन्त (अर्जुन के) बाहुबल की स्तुति करते हैं ।।२०५।।

अथ रौद्ररसवर्णनम्—

रक्तः क्रोधस्थायिभावो रौद्रो रुद्राधिदैवतः[1] ।।१०८।।

कोध रौद्ररसका स्थायिभाव है, वर्ण इसका लाल है, तथा रुद्र इसका देवता है ।

यथा—

'कृत्वा प्रौढ़प्रतिज्ञां निखिलभटपुरोर्वत्तिना येन पूर्वम्'
इत्यादिनोक्त एव ।

देखिये पृ० ८३ उदाहरण सं० १३१

यथावा—

भंक्त्वा कोदण्डमैशं निखिलनृपपुरो यातवीर्याभिमानो-
गन्तुं कुत्राद्य चित्तं कलयसि महतीं रामसञ्ज्ञां निधाय ।
हन्ता राजन्यकानां रणभुवि कतिधा यः श्रुतः स्वस्य वृद्धात्
सोऽहं संजातकोपः सविधमुपगतः साम्प्रतम् पर्शुरामः ।।२०६।।

समस्त राजाओं के समक्ष शिव धनुष तोड़कर शक्ति का अभिमान करने वाले तथा राम के महान् नाम को धारण कर अब तुम कहां जाना चाहते हो ? तुमने वृद्धों (पिता पितामहों) से सुना होगा कि मैं अनेक बार युद्ध भूमि में क्षत्रियों का नाश करने वाला परशुराम, हूँ, वह मैं परशुराम इस समय क्रुद्ध होकर तुम्हारे पास पहुंचा हूं ।

---

१. परिपूर्णः क्रोधो रौद्रः, सर्वेन्द्रियाणामौद्धत्यं वा । रस० पृ० १३३

यथावा—

सम्पूज्यो बाहुजानां भवसि नयभृतां नोचिता वृद्धबन्धो[1]
प्रौढोक्तिः कापि विप्र त्वयि तदपि वचः श्रूयताम्मे तथापि ।
संहत्य स्वल्पवीर्यान् रणभुवि भवतो जातदर्पस्य गर्वः
शृण्वन्मे चापचण्डध्वनिमथ विलयं यास्यति [2]प्राङ् निकामम् ॥

अथवा

आप नीतिनिपुण क्षत्रियों के पूज्य हैं, आये हुए ब्राह्मण के समक्ष कोई प्रौढोक्ति उचित नहीं है, फिर भी आप जरा मेरे वचनों को सुनें. 'युद्ध में निर्बलों को मार कर आपको जो अभिमान उत्पन्न हो गया है, वह मेरे प्रचण्ड चाप के तीव्र टंकार को सुनते ही अभी पूरी तरह विलीन हो जाएगा' ॥२०७॥

अथ शान्तरसवर्णनम्

शान्तः [3]शमस्थायिभावः श्वेतः श्रीपतिदैवतः[4] ।

शान्तरस का स्थायिभाव शम है, वर्ण इसका श्वेत है, तथा श्रीपति इसका देवता है ।

न सेवा देवानां सकृदपि कृता तावक यशो
न गीतं पीतं वा त्रिदशतटिनी वारिमधुरम् ।
प्रिया रङ्गासङ्गे बहुमतिमतो हन्त भविता
न जाने श्रीजाने किमिति परिणामे मम पुनः ॥२०८॥

हे श्रीपति ! हमने न देवों की सेवा की है, न आपका यशोगान किया है, और न गङ्गा जल का पान ही किया है । प्रेयसी के साथ रङ्गरेलियों में आसक्त मुझ अधम का हाय न जाने क्या परिणाम होगा ।

---

१. त्वं हि नो वृद्धबन्धो क.

२. द्राङ् क

३. शमः ख

४. निर्वेदस्य परिपोषः शान्तो रसः, दोषप्रशमो वा । रस० पृ० १५१

यथा वा—

सदा भक्त्या हीने कलुषभरलीने किल जने
कृपा ते श्रीबन्धो वसति गुणसिन्धो सुमहती ।
अतो हेतोश्चेतो मम गरुडकेतो वितनुते
प्रमोदं निश्शङ्कं जगति बहुतङ्कं[४] कृतवति ॥२०९॥

सदा ही आप की भक्ति से रहित और अनन्त पापों में लीन व्यक्ति पर भी हे गुणों के सागर ! आपकी व अपार कृपा रहती है, हे गरुडध्वज ! इसीलिए संसार में बहुत पाप करके भी मेरा चित्त निश्शंक आनन्द मनाता है ।

यथा वा—

क्षणज्योतिःप्रख्यं सकृदपि च सौख्यं विषयजम्
भ्रमान्मा गाः स्वान्त त्यज विषमिवान्तस्थमचिरम् ।
मुदा बारं बारं जगति सदुदारं पदयुगम्
भजस्व श्री भर्त्तुः शमनभयहर्त्तुश्च नितराम् ॥२१०॥

अथवा—

कुछ क्षण अपार ज्ञान का प्रकाश और फिर विषयजन्य सुख में पड़कर भ्रम के वश में न पड़ो, अपने अन्तकरण में स्थित वासनाओं को विष की भांति अविलम्ब छोड़ दो, और हर्षित होते हुए बारम्बार विश्व में श्रेष्ठ श्रीपति के चरणारविन्द की सेवा करो, वे समग्र रूप से शान्ति देने वाले तथा भय को हरने वाले हैं ।

यथा वा—

उन्मादभ्रमिसञ्चयेन बलिते तृष्णास्रवन्तीयुते
कामोत्तुङ्गतरङ्गशालिनि महामोहान्धकारावृते ।
क्रोधप्रौढसमीरणेन चलितेऽहंकारनीराहिते
संसाराम्बुनिधौ च तारणतरिस्त्वन्नाम लक्ष्मीपते ॥२११॥

हे लक्ष्मीपति ! उन्मादरूपी भंवर के समूह से आवृत, तृष्णा के प्रवाह से युक्त, काम की उत्तुङ्ग तरङ्गों से सुशोभित, मोहरूपी अन्धकार से आवृत, क्रोधरूपी आंधी से चंचल, अहंकार के जल से परिपूर्ण संसाररूपी सागर से पार कराने के लिए आपका नाम ही नौका है । (रूपक-अतिशयोक्ति संकर अलंकार)

---

४. पङ्कम् क

यथावा—

जगतामसतोहरणं परिहरकरणं[1] हि दुःखानाम् ।
सञ्चिन्तय भय हरणं चरणं कमलालयाभर्त्तुः ।।२१२।।

जगत् के असत् को हरने वाले, दुखों का परिहार करने वाले, भ्रम को दूर करने वाले लक्ष्मीपति के चरणों का निरन्तर ध्यान करो ।

श्री वेणीदत्तकृते रसकौस्तुभे नवरसवर्णनं परिपूर्णम्[2] ।

वेणीदत्तविरचित रसकौस्तुभ में नव रस वर्णन समाप्त हुआ ।

श्री राधाकृष्णर्पणमस्तु[3] ।

श्रीराधाकृष्ण को अर्पण हो ।

पुष्पिका—

आसीद्यस्तीरभुक्तौ ललिततर[4]महावंशजश्चारुकर्मा
चञ्चच्छास्त्राब्जभानुः प्रथितवरयशाः श्री जगन्नाथशर्मा ।
चक्रे तस्याग्रजन्मा मुरहरचरणाम्भोरुहासक्तचित्तो
वेणीदत्तः प्रयत्नादतिरुचिरतरं कौस्तुभं सद्रसानाम् ।।

तीरभुक्ति (तिरहुत) प्रदेश में अत्यन्त ललित महावंश में उत्पेन्न श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले शास्त्ररूपीकमल के लिए देदीप्यमान सूर्यरूप यशस्वी श्रीजगन्नाथ शर्मा उत्पन्न हुए थे । उनके पुत्र मुरारि के चरण कमलों में आसक्तचित्त श्री वेणीदत्त ने प्रयत्नपूर्वक अतिशय रुचिर रसों के कौस्तुभ का अर्थात् रस-कौस्तुभ ग्रन्थ का निर्माण किया है ।

---

१. सदाचरणं क. ख

२. इति रसकौस्तुभे नवरस वर्णनं समाप्तम् । क

३. क पुस्तके नास्ति ।

४. ललितकर क. ख.

आसीद्यो द्विजदानसंभवफलानन्दैस्सदावर्द्धितः,
श्रीमत्कृष्णकथाभिमोदितमना श्रीबालरामो विधुः ।
सद्वंश्यो बहरारि सिन्धुविलसज्जन्मावदाते कुले ।
वाचाख्येन मनोहरेण लिखितं तस्यात्मजेन ध्रुवम् ।।

ब्राह्मणों को दिये वाले जाने दान से उत्पन्न होने वाले आनन्द से सदा संवर्द्धित तथा श्री सहित कृष्ण की कथाओं से आनन्दित मानस वाले श्री बालरामचन्द्र हुए थे। उनके ही पुत्र सुन्दर वंश में उत्पन्न बहरारि सिन्धु के तट पर सुशोभित कुल वाले बच्चा मनोहर ने इसका लेखन (प्रतिलिपिकरण) किया।

उपमन्युकुले जातो ब्रह्मनिष्ठो गुणाग्रणीः
रविनाथः सुधीः श्रीमान् वेदविद्याविशारदः ।।१।।
योगिराजः कर्मनिष्ठो मोक्षसाधनतत्परः ।
तस्यासौ मध्यमः पुत्रः सच्छिष्यैः समलङ्कृतः ।
नानाशास्त्रार्थकुशलः ब्रह्ममित्रः सुधी महान् ।।२।।
अकरोद् भाषया वृत्ति रसकौस्तुभदीपिकाम् ।
गङ्गायमुनयोरङ्के प्रयागं नगरं शुभम् ।।४।।
तत्राब्दे तु चतुस्त्रिशदधिके द्विसहस्रके ।
ज्येष्ठे मासे शुक्लपक्षे कृताष्टम्यां गुरौ दिने ।।५।।

समाप्तोऽयंग्रन्थः ।

उदाहरण सूची

डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी की कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियां

१. भारतीय न्याय शास्त्र : एक अध्ययन
(अनेक विश्वविद्यालयों में एम० ए० (संस्कृत) के लिए स्वीकृत)
२. पातञ्जल योगशास्त्र : एक अध्ययन
३. कठोपनिषद उपनिषत्प्रभाकर भाष्य
४. दर्पदलन (क्षेमेन्द्रकृत) हिन्दी अध्ययन एवं अनुवाद सहित
५. तत्त्वत्रय (लोकाचार्य कृत) अंग्रेजी हिन्दी अनुवाद सहित
६. सुबोधालंकार (संघरक्खितकृत) संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित
७. स्वभाषालंकार (सियवसलकुर–शिलामेघसेनकृत) संस्कृत हिन्दी अनुवाद (सिंहली भाषा का सप्तम शताब्दी में रचित अलंकार ग्रन्थ)
८. अभिधावृत्तमातृका (मुकुलभट्टकृत) हिन्दी व्याख्या सहित
९. शब्दव्यापारविचार (मम्मटकृत) हिन्दी व्याख्या सहित
१०. वृत्तिवार्त्तिक (अप्पयदीक्षितकृत) हिन्दी व्याख्या सहित
११. त्रिवेणिका (आशाधरभट्ट कृत) हिन्दी व्याख्या सहित (शब्दशक्तिविषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)
१२. कोविदानन्द (आशाधरभट्ट कृत) संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित (शब्दशक्तिविषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ)
१३. वृत्तिसमुच्चय प्रथम गुच्छक-प्रथम भाग
१४. ,, ,, द्वितीय भाग
१५. पातञ्जलयोग पर बौद्ध धर्म का प्रभाव
१६. रस कौस्तुभ
१७. साहित्य दर्पण (परिच्छेद १-२) अनन्तदास कृत लोचन और हिन्दी व्याख्या सहित
१८. वाक्यार्थमातृकावृत्ति (शालिकनाथकृत) हिन्दी व्याख्या सहित
१९. तत्त्वबिन्दु (वाचस्पतिमिश्रकृत) हिन्दी व्याख्या सहित
२०. वाक्यार्थ निर्णय (पार्थसारथिमिश्रकृत) हिन्दी व्याख्या सहित
२१. वृत्ति समुच्चय (शब्दशक्तिविषयक-समस्त मौलिक सामग्री का अपूर्व संकलन पांचगुच्छकों में (सम्भावित मूल्य)
२२. महिमभट्टकृत काव्यदोष विवेचन : एक अध्ययन (लखनऊ विश्वविद्यालय से स्वीकृत शोधप्रबंध)
२३. साहित्य सुधानिधि (शोधनिबंध संग्रह)
२४. अलंकार कोष (२४० अलंकारों का अध्ययन)

प्राप्ति स्थान : इन्दु प्रकाशन ८।३ रूपनगर, दिल्ली-७